RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17 प्रकाशन तिथि 28 जून 2016

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका जुलाई 2016

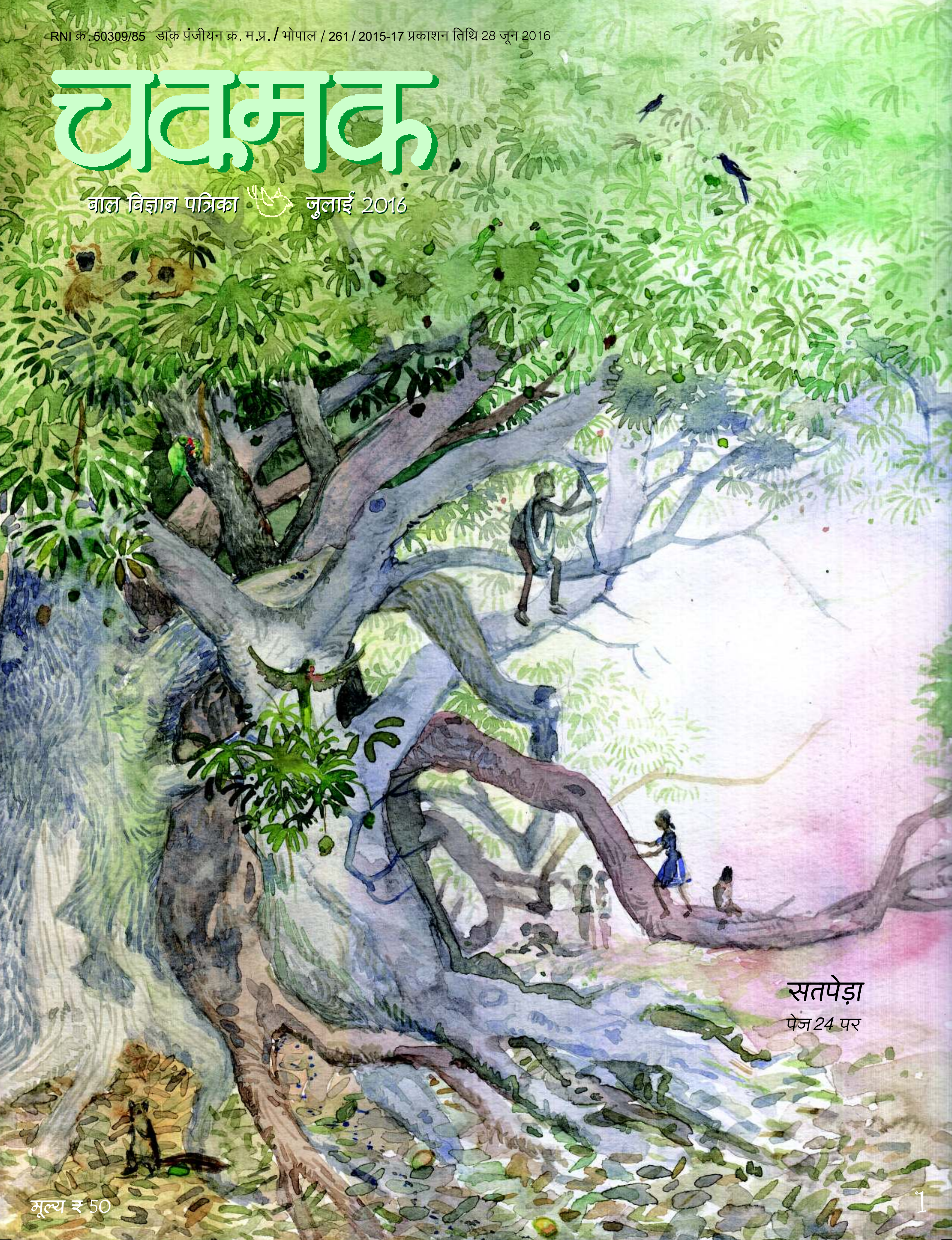

सतपेड़ा

पेज 24 पर

मूल्य ₹ 50

चकमक कविता कार्ड

पढ़ो और फिर चाहो तो अपने दोस्त को
इसी कार्ड के दूसरी तरफ
एक चिट्ठी लिखकर
भेज दो।

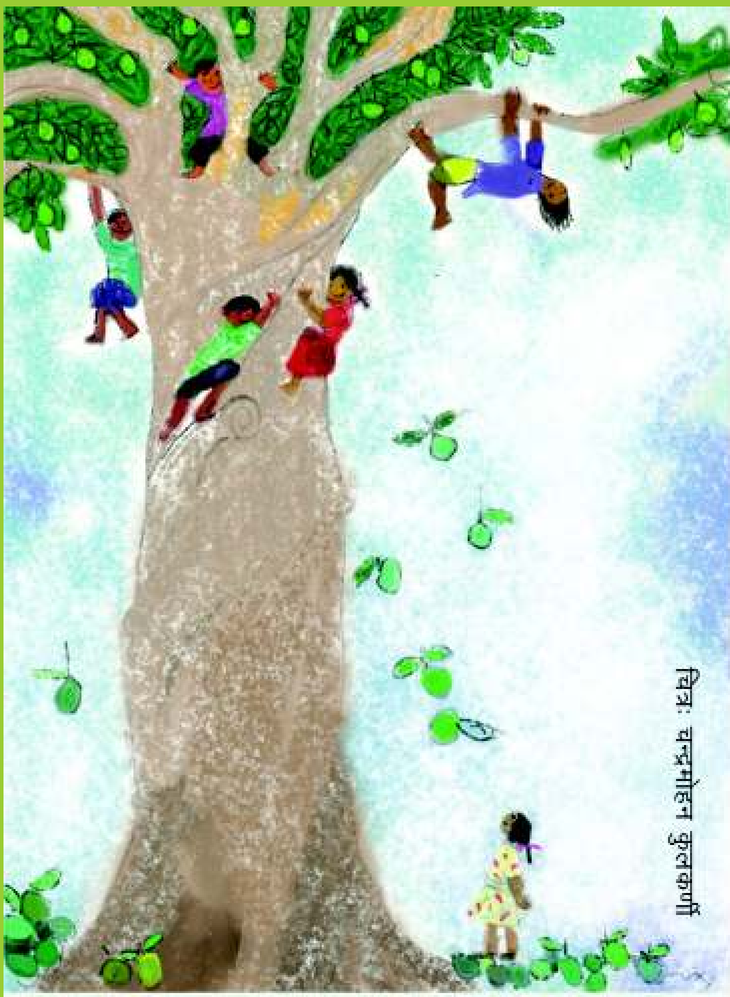

दोस्त बनाना पड़ते हैं

- ध्रुव शुक्ल

ऐसे दोस्त कहाँ मिलते हैं
जो पेड़ों पर चढ़ते हैं
वे सारे अमरूद गिराकर
खाते और झगड़ते हैं

ऐसे दोस्त कहाँ रहते हैं
नया चुटकुला गढ़ते हैं
हँसते और हँसाते हमको
मिलकर आगे बढ़ते हैं

ऐसे दोस्त कहाँ ढूँढें जो
नहीं किसी से लड़ते हैं
बना-बनाया सब मिल जाता
दोस्त बनाना पड़ते हैं

चकमक:0755- 4252927 9425010115 chakmak@eklavya.in

कविता कार्ड के
चार गुच्छे।
एक गुच्छे में
बारह कविताएँ।
एक गुच्छे की कीमत है
सिर्फ पचास रुपए।

इन्हें
मँगाने के लिए तुम
चकमक के पते पर
लिख सकते हो। या हमें फोन कर सकते हो।
या चाहो तो सीधे ऑनलाइन मँगा लो -
Http://www.eklavya.in/pitara/chakmak_kavita_cards

इस अंक में

4 तू ही नादां चन्द कलियों पर कनाअत कर गया / हिमांशु बाजपेयी
6 मितवा / कमला भसीन
9 कहाँ चली है पंख पसारे... / रावेन्द्र कुमार रवि
10 प्यारे भाई रामसहाय / स्वयं प्रकाश
12 अगर मगर / गुलज़ार
14 झील इसलिए सूख गई / प्रियम्वद
17 वो पढ़ाई के दिन / शरतचन्द्र
18 पूड़ियों की गठरी / कृष्ण कुमार
22 दाल नहीं गलता है / रमाकान्त अग्निहोत्री
23 बाल कबीले का लोकगीत / हेमन्त देवलेकर
24 सतपेड़ा / प्रयाग शुक्ल
25 माथापच्ची
26 अजीब कोना / दिलीप चिंचालकर
27 चाँदी का पीपल / दिलीप चिंचालकर
28 चींटियों की दावत / गतिविधि
32 आग / अरुण कमल
34 बोली रंगोली
38 बुलबुले / अशोक भौमिक
40 बलूत / दया पँवार
43 चित्र पहेली / कविता तिवारी
44 मेरा पन्ना
46 बूँद / उदयन वाजपेयी
47 जितनी बूँदें / रघुवीर सहाय

भूल सुधारः चकमक के पिछले अंक में पेज 41 पर हरीओम पाटीदार का चित्र है। गलती से यह चित्र जीतेन्द्र चौरसिया के नाम से छप गया है।

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 358 जुलाई 2016

गिलहरी का पानी

मैं गर्मियों के मज़े ले रही थी। कि एक दिन मुझ से थोड़ा-सा पानी गिर गया। तभी एक गिलहरी आई। उसने पानी पिया और झट भाग गई। उस दिन पहली बार मुझे पानी की कीमत समझ आई।

—पूर्वांशी विवेक हिलोडे, दूसरी, भोपाल

चित्रः दिलीप चिंचालकर

आवरण चित्र
नीलेश गहलोत

हाशिए के चित्र
श्वेता नाम्बियार

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव
ब्रजेश सिंह

तक्षशिला एजुकेशन सोसाइटी के वित्तीय सहयोग से विकसित

एक प्रति :	50.00
वार्षिक :	500.00
तीन साल :	1350.00
आजीवन :	6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

एक किस्सा...

तू ही नादां चन्द कलियों पर कनाअत कर गया

हिमांशु बाजपेयी

बचपन की आदतें बुढ़ापे में भी इंसान को किस दरजा मजबूर-ओ-लाचार बनाए रखती हैं, इसकी मिसाल ये किस्सा है। चौपटियों के लप्पू दर्ज़ी, जिन्हें सब लप्पू मास्टर भी कहते थे, अपनी एक आदत की वजह से खासे बदनाम थे, जिसका ज़िक्र आगे आएगा। एक दफा वो बहुत बीमार हो गए। इसी आलम में उन्हें ख्वाब आया कि वो सचमुच मर गए हैं और कब्र में दफन हैं, जहाँ चारों तरफ उन्हें लाल, हरी, नीली, पीली बेशुमार किस्म की रंग-बिरंगी झण्डियाँ टँगी दिखाई दे रही हैं। फरिश्तों से पूछने पर मालूम हुआ कि उन्होंने दुकान पर सिलाई करते हुए जिस-जिस रंग का कपड़ा चुराया था, ये उसकी गवाही हैं जिन्हें देखकर अल्लाह मियां उनके गुनाहों की सज़ा मुकर्रर करेंगे। सज़ा की बात सुनते ही लप्पू के हाथ-पाँव फूल गए। उन्होंने अपने आपको एक ज़ोरदार तमाचा मारते हुए फौरन तौबा की। तमाचा इतना ज़बरदस्त था कि ख्वाब टूट गया। होश में आने के बाद लप्पू देर तक बेचैन रहे। कसम खाई कि अब अगर बफज़्ले खुदा (खुदा के रहम से) अच्छे हुए तो कपड़े की चोरी हरगिज़ नहीं करेंगे...

वक्त गुज़रता गया और लप्पू धीरे-धीरे अच्छे हो गए। पहले ही दिन जब वो अपनी दुकान पर वापस पहुँचे तो अपने सारे शागिर्दों को बुलाकर अपने ख्वाब की तफ्सील बताई और फिर कहा, "मैं उसी दिन से कपड़े की चोरी में मुब्तला (फँसा हुआ) हूँ जिस दिन मैंने सिलाई सीखना शुरू किया था। अब ये आदत इतनी पुरानी हो गई है कि इसका छूटना बहुत दुश्वार है। मगर वो खौफनाक ख्वाब देखने के बाद मैंने कसम खाई है कि अब चाहे जो हो जाए कपड़े की चोरी हरगिज़ नहीं करूँगा। लिहाज़ा अगर कभी किसी कपड़े को देखकर बेइख्तियार मेरी नीयत खराब हो और मैं चोर-कैंची चलाना चाहूँ तो तुम लोग ऊँची आवाज़ में कहना, 'मास्टर झण्डी!' ऐसा करते ही सज़ा के खयाल से मेरी रूह काँप जाएगी और मैं चोरी करने से बच जाऊँगा.."

शागिर्दों ने हुक्म की तामील की। जब भी लप्पू की नीयत खराब होती शागिर्द "मास्टर झण्डी!" कह देते और लप्पू गुनाह से बच जाते। एक बार किसी दास्तानगो की अचकन सिलने के लिए चिकन का बहुत बढ़िया कपड़ा आया। लप्पू का मन डोला। देर तक उसे हसरत भरी निगाहों से देखते रहे। आखिरकार उनसे रहा न गया। कैंची लगाई और शागिर्दों की नज़र बचाकर चाहा कि काट लें मगर तभी कोई चिल्लाया, "मास्टर झण्डी!" लप्पू मास्टर लम्हे भर को सटपटाए, मगर आज वो कुछ और ही करने पर आमादा थे। फौरन खुद को सम्भालकर बोले, "अमां चिकन की झण्डी वहाँ नहीं थी...।" और कपड़ा काटकर निकाल लिया।

तू ही नादां चन्द कलियों पर कनाअत कर गया
वरना गुलशन में इलाज-ए-तंगि-ए-दामां भी है

चित्रः प्रिया कुरियन

चित्रः सुजाशा दासगुप्ता

मितवा

कमला भसीन

मैं पँजाब के एक सिख परिवार की बेटी हूँ। मेरी उम्र बीस साल है। हम एक गाँव में रहते हैं। यहाँ ज़्यादातर परिवार खेती करते हैं। कुछ किसान बहुत अमीर हैं। उनके बड़े-बड़े खेत हैं। कई ट्रैक्टर हैं। फसल काटने की बड़ी-बड़ी डरावनी मशीनें भी हैं।

मेरे पिताजी भी किसान हैं – न बड़े, न छोटे किसान। मेरी माँ भी किसान हैं। हल चलाने के अलावा माँ खेत पर सब काम करती हैं। जैसे पानी देना, बीज बोना, कटाई करना। सब से बड़ा काम जो माँ करती हैं वो है फसलों से दोस्ती और प्यार करना।

मेरा नाम है मितवा यानी प्यारा दोस्त या सहेली। माँ ने मुझे यह नाम दिया था। जब मैं पैदा हुई तो माँ को लगा उनकी सहेली आ गई है। मन की मीत आ गई है। हम हैं भी अच्छे दोस्त। मैं माँ की मितवा, माँ मेरी मितवा। मेरे दो बड़े भाई हैं – दलजीत और मनजीत।

आज मैं सोचती हूँ कि मेरी किस्मत अच्छी थी जो मुझ से पहले दो भाई थे। अगर दो बहनें होतीं तो मुझे पैदा ही नहीं होने दिया जाता। हमारे गाँव में कई बेटियों को पैदा होने से पहले ही मार देते हैं। इसीलिए यहाँ लड़कियाँ कम हैं। मुझे नहीं समझ में आता कि यहाँ के लोग लड़कियों से क्यों नफरत करते हैं! उन्हें क्यों लड़कों से कम समझते हैं!

मेरे पिताजी मुझे प्यार तो करते थे मगर उन्हें अपना प्यार दिखाना नहीं आता था। वो अधिकार ज़्यादा दिखाते थे प्यार कम दिखा पाते थे। शायद पिताजी दोनों वीरजी (भाइयों) को ज़्यादा प्यार करते थे। वे उन्हें अपने साथ रखते थे। बाहर ले जाते थे। ज़्यादा आज़ादी देते थे। वैसे पिताजी वीरजिओं को डाँटते भी खूब थे। पिताजी से हम सब को डर लगता था। उनका धौंस जमाना किसी को अच्छा नहीं लगता था। सब से ज़्यादा धौंस वो माँ पर जमाते थे। वे माँ को साथी नहीं दासी समझते थे। माँ पिताजी को कुछ नहीं कहती थी। मुझ से बात करके अपना मन हलका कर लेती थी।

मैंने पास के गाँव के सरकारी स्कूल से बारहवीं पास की। मुझे स्कूल तो भेजा गया मगर उसके अलावा बाहर जाने की, बाहर खेलने की आज़ादी नहीं दी गई। पिताजी कहते थे, “शरीफ लड़कियाँ बाहर नहीं जातीं।” मैं मन ही मन कहती, “हाँ, सिर्फ बदमाश लड़के बाहर घूमते हैं। उनकी वजह से लड़कियों को घर में बन्द रहना पड़ता है।”

साईकल चलाना मैंने चोरी-चोरी मनजीत वीरजी से सीखा। मेरे ये भाई बहुत ही कोमल दिल के हैं, नम्र हैं। वे मुझे अपने से कम नहीं समझते हैं। मैं मनजीत वीरजी जैसे मर्द से शादी करूँगी जो मुझे अपने बराबर समझे।

दो साल पहले पिताजी ने एक ट्रैक्टर खरीदा था। दोनों वीरजी जल्दी ही ट्रैक्टर चलाना सीख गए। उन्हें ट्रैक्टर चलाते देख पिताजी बहुत खुश होते। मेरा भी बहुत मन था ट्रैक्टर चलाना सीखने का। मैं 18 साल की थी। अच्छी तन्दुरुस्त थी। मगर पिताजी ने कह दिया, “लड़कियाँ ट्रैक्टर नहीं चलातीं।” यह सुनकर मेरा मन बहुत दुखा मगर पिताजी की बात ठीक हो या गलत माननी पड़ती थी।

मगर अब पिताजी बहुत बदल गए हैं। मैं बताती हूँ यह बदलाव क्यों और कैसे आया।

सात-आठ महीने पहले एक दिन अचानक पिताजी को दिल का दौरा पड़ा। दोनों वीरजी किसी काम से शहर गए हुए थे। घर पर सिर्फ माँ दो खेत मज़दूर और मैं थे। हमारे गाँव में कोई अच्छा डॉक्टर नहीं है। बड़ा सरकारी अस्पताल पाँच किलोमीटर दूर है। पिताजी की हालत तेज़ी से बिगड़ रही थी। उनका एकदम अस्पताल पहुँचना बहुत ज़रूरी था। बहुत ही डरी हुई और निराश आवाज़ में पिताजी बुदबुदाए, “इस वक्त मेरे बेटे होते तो शायद मेरी जान बच जाती।” बस यही बुदबदाते हुए वे बेहोश हो गए।

जब मैं पैदा हुई तो माँ को लगा उनकी सहेली आ गई है। मन की मीत आ गई है। हम हैं भी अच्छे दोस्त। मैं माँ की मितवा, माँ मेरी मितवा।

हालात को सम्भालते हुए मैंने माँ और दोनों मज़दूरों से कहा, "जल्दी से पिताजी की मँजी (चारपाई) को ट्रैक्टर की ट्रॉली में रखते हैं। उन्हें अस्पताल ले जाना है।" वे तीनों हैरान थे मगर उन्होंने किया वही जो मैंने कहा।

हम बिना देर किए अस्पताल पहुँच गए। खुशकिस्मती से डॉक्टर वहीं मौजूद थे। पिताजी का इलाज तुरन्त शुरू हो गया। डर से हमारी जान निकल रही थी। पर जल्द ही उनकी हालत सम्भल गई। और हम सबकी साँस में साँस आई।

पिताजी को होश आने पर माँ और मैं उनके कमरे में गए। पिताजी ने आँखें खोलीं। हमें देखा और धीमी आवाज़ में पूछा, "मैं अस्पताल कैसे पहुँचा? कौन लाया मुझे यहाँ?"

माँ ने उनके हाथ पर हाथ रख मुस्कराकर कहा, "मितवा। ट्रैक्टर चलाकर आपको यहाँ लाई।"

"मितवा लाई! वो कैसे लाई! उसे तो ट्रैक्टर चलाना नहीं आता।" बहुत हैरान थे पिताजी।

माँ ने कहा, "मितवा ने चोरी से ट्रैक्टर चलाना सीखा। मनजीत ने सिखाया। वाहे गुरु का शुकर है मितवा ने आपका हुकुम नहीं माना।"

पिताजी कुछ बोले नहीं मगर उनकी मुस्कान से ऐसा लगा जैसे वे भी मेरी इस "चोरी" पर खुश थे। इशारे से उन्होंने मुझे पास बुलाया। और मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। हम तीनों की आँखें गीली थीं और दिल हलके।

चित्रः सुजाशा दासगुप्ता

कहाँ चली है पंख पसारे...

रावेन्द्र कुमार रवि

उसके हैं
दो पंख निराले,
थोड़े पीले, थोड़े काले!

प्यूपा में से
निकल उड़ी है,
कहाँ चली है पंख पसारे!
गा लें कितना भी अच्छा, पर
उससे सारे भौंरे हारे!

उसे फूल सब बहुत लुभाते,
खुशबू या बे खुशबूवाले!

बगिया की
शीतल छाया में,
हवा की जब नदिया बहती है!
उसमें नन्ही नाव सरीखी,
खुश होकर तैरा करती है!

इधर-उधर हिचकोले खाती,
अपनी नन्ही सूँड़ सँभाले!

चक मक

चित्रः अतनु राय

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयं प्रकाश

महान क्रिकेट खिलाड़ी और भारत के भूतपूर्व कप्तान कर्नल सी.के.नायडू अकसर हमारे खेल के मैदान पर आ जाया करते थे। जब भी कोई टूर्नामेंट होता, वह एक तरफ खड़े नज़र आते। लम्बा कद, सुतवाँ बदन, गिद्ध जैसी नज़र और तनी रीढ़। बच्चे उन्हें दादाजी कहते और उनके गिर्द खड़े हो जाते। उनके नीले कोट पर इण्डिया का कलर लगा होता और हमें लगता कि किसी भी भारतीय के जीवन में इससे बड़ी उपलब्धि तो कोई हो ही नहीं सकती।

उन दिनों क्रिकेट उतना लोकप्रिय नहीं था जितना फुटबॉल, लेकिन फिर भी छुट्टी के दिन खेल के हमारे मैदान पर जगह-जगह सात-आठ पिच बन जातीं, स्टम्प गड़ जाते और मोहल्ले की टीमों के मैच शुरू हो जाते। इन मैचों के परमानेंट दर्शक नायडू दादाजी एक छड़ी लेकर आते जो ऊपर से कुर्सी की तरह खुल जाती और जिस पर बैठ तो नहीं, लेकिन आराम से टिका ज़रूर जा सकता था। दिन भर खेल चलता, इधर की गेंद उधर और उधर की गेंद इधर आती-जाती रहती। लेकिन किसी का मज़ा किरकिरा नहीं होता।

उन्हीं दिनों पाकिस्तान की क्रिकेट टीम भारत आई और हमारे शहर के यशवन्त स्टेडियम पर मध्यप्रदेश की रणजी टीम के साथ तीन दिवसीय मैच आयोजित हुआ। इसमें सबसे मज़ेदार बात यह थी कि अभी-अभी चयनित प्रदेश की रणजी ट्रॉफी टीम में हमारे स्कूल के भी दो लड़के थे। एक विनय माथुर जो बॉलर था और दूसरा मनोहर शर्मा जो बेट्समेन और विकेटकीपर था। लोगों का कहना था कि दोनों का खेल नायडू दादाजी ने देखा था और उन्हीं की सिफारिश पर उन्हें रणजी टीम में लिया गया है।

विनय माथुर हमसे एक कक्षा आगे था और मनोहर शर्मा तो दसवीं में था। विनय बहुत बढ़िया यॉर्कर फेंकता था। हालाँकि तब हम यह नहीं जानते थे कि जो गेंद ज़मीन पर सरपट भागती हुई आए और सीधे विकेट में घुस जाए उसे "यॉर्कर" कहते हैं। हम तो उसे "सुर्री" कहते थे। मनोहर शर्मा तो एकदम आदमियों जैसा लगता था। उसका बदन इतना चौड़ा था कि गेंद उसे चकमा देकर जा ही नहीं सकती थी। अब लेकिन समस्या ये आ गई कि विनय और मनोहर दोनों में से किसी के पास सफेद पतलून नहीं थी। कमीज़ तो थी, लेकिन पतलून की समस्या थी और मैच से एक दिन पहले वे सबसे पूछते फिर रहे थे कि क्या कोई उन्हें तीन दिन के लिए सफेद पतलून दे सकता है? अब विनय को तो कोई दे भी देता और किसी ने दे भी दी, लेकिन मनोहर जैसे चौड़े आदमी के नाप की पतलून थी किसके पास? और फिर यही हुआ कि मनोहर को मैच के दिन एक हलकी पीली पतलून – जेसे आजकल "ऑफ व्हाइट" कहते हैं, ही पहनना पड़ी।

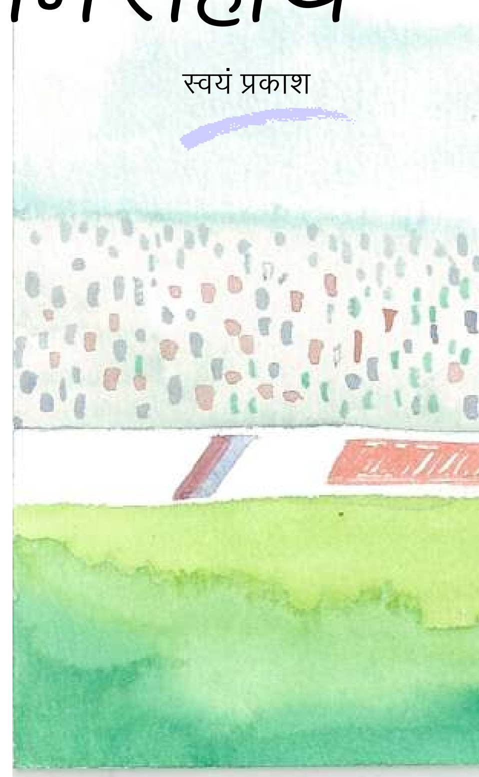

चित्रः मयूख घोष

मैच से एक दिन पहले बालकिशन ने मुझसे पूछा कि क्या मैं यशवन्त स्टेडियम जाकर मैच देखना चाहूँगा?

मैंने पूछा, "टिकट?"

बालकिशन बोला, "मेरे पास पास है।"

मैंने पूछा, "कहाँ से आया?"

बालकिशन बोला, "नायडू दादाजी ने दिया। मतलब मुझे नहीं दिया, इम्मी को दिया, लेकिन इम्मी जाना नहीं चाहता तो उसने मुझे दे दिया।"

इम्मी हमारे स्कूल का हीरो फुटबॉल खिलाड़ी था।

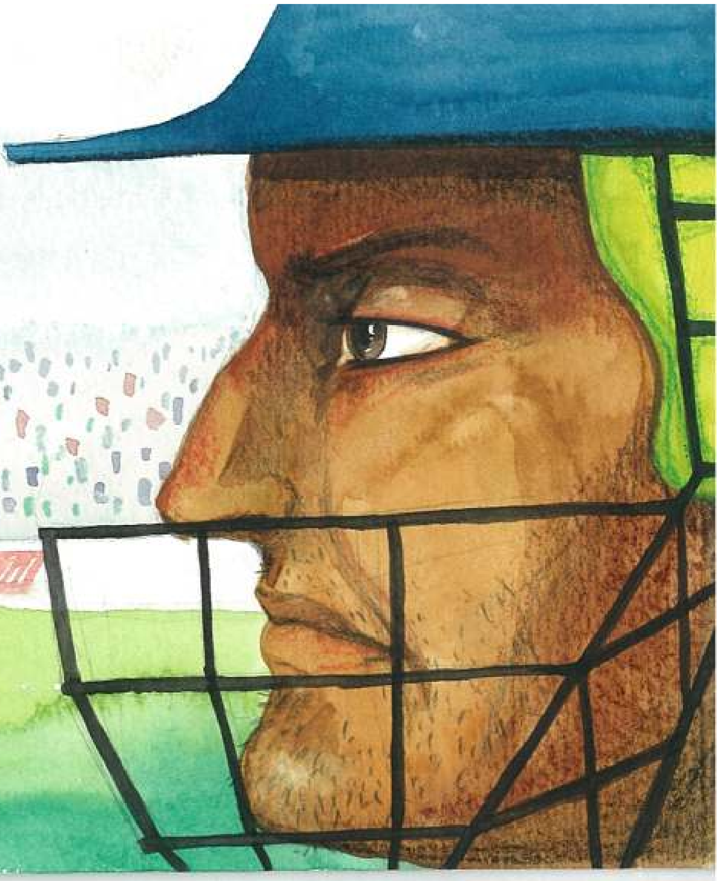

मैंने कभी स्टेडियम में जाकर क्रिकेट मैच नहीं देखा था इसलिए मैं राजी हो गया।

स्टेडियम में मैं जहाँ बैठ पाया वहाँ सामने से धूप आ रही थी। मेरे पास छज्जेवाली टोपी भी नहीं थी। पिच पर क्या हो रहा है कुछ साफ नज़र नहीं आ रहा था। खिलाड़ियों के चेहरे तो बिलकुल नज़र नहीं आ रहे थे। वैसे भी पाकिस्तानी खिलाड़ियों को तो मैं जानता ही नहीं था और अपने खिलाडियों में भी मेरी दिलचस्पी तो विनय माथुर और मनोहर शर्मा में ही थी। हाँ, इतना ज़रूर समझ में आ गया कि पाकिस्तान की टीम बैटिंग कर रही है।

उन दिनों आज की तरह आक्रामक क्रिकेट नहीं खेला जाता था। चौके वगैरह बड़ी मुश्किल से लगते थे और छक्का तो एक मैच में एक या दो लग गए तो समझो बहुत लग गए। कई खिलाड़ी तो ऐसे थे जो घण्टों बगैर एक भी रन बनाए पिच पर खड़े रह सकते थे।

हर ओवर के बाद विकेटकीपर इधर से उधर जाता और सारी फील्ड दोबारा सजाई जाती। और यह सब इतना धीरे-धीरे होता कि ऐसा लगता जैसे खिलाडी तंग आए हुए हैं और जल्दी से जल्दी घर जाना चाहते हैं। तेज़ धूप में दिन भर दौड़ना-भागना हमें भी कहाँ अच्छा लगता था! इसलिए बीच-बीच में जब उनके लिए पानी वगैरह लेकर ट्रॉली आती तो सब एकदम से उस पर टूट पड़ते और कई तो मैदान पर पसर भी जाते, जैसे कई दिनों बाद लेटने का मौका मिला है।

तो उस दिन हुआ यह कि चायकाल तक पाकिस्तान का एक भी विकेट नहीं गिरा। चायकाल के ऐन पहले एक खिलाड़ी बड़ी मुश्किल से आउट हुआ – सो भी रन आउट। मैं तो अच्छा-खासा बोर हो गया। गर्मी और पसीने ने मुझे बेहाल कर रखा था। मेरी जेब में पैसे भी नहीं थे कि दो आने का सोडा लेमन खरीद कर पी सकूँ या दो पैसे की मूँगफली का ठोंगा ही लेकर खा सकूँ।

ऊपर से विनय! उसे बड़ी उम्मीद से उतारा गया था, लेकिन उसे एक भी विकेट नहीं मिला। हालाँकि उसने रन भी ज़्यादा नहीं दिए। शुरू-शरू में बेट्समेन उसकी गेंद पर बीट ज़रूर हुए, लेकिन गेंद स्टम्प पर नहीं लगी, इधर-उधर से निकल गई। बाद में वे समझ गए और विनय की गेंद पर शॉट मारने की कोशिश करने की बजाय उसे सीधे बल्ले से रोकने लगे। बेचारा विनय।

और मुझे विनय से ज़्यादा दादाजी के लिए दुख हो रहा था। क्या सोच रहे होंगे दादाजी! कि जिसकी उन्होंने सिफारिश की उसने उनकी नाक कटवा दी। काश, विनय को एकाध विकेट मिल जाता।

आखिर बुरी तरह बोर होकर भूखा-प्यासा मैं चायकाल में स्टेडियम से बाहर आ गया और घर के लिए रवाना हो गया।

उस ज़माने में टीवी तो होती नहीं थी। हाँ, रेडियो ज़रूर होते थे। रेडियो पर और खेलों की तरह क्रिकेट की भी कमेंट्री आती थी और लोग उसे सुनते भी थे।

(शेष भाग पेज 39 पर)

चित्रः अतनु राय

अगर मगर

अगर तुम्हारे भी मन में कोई सवाल है जिसे तुम गुलज़ार साब से पूछना चाहते हो तो उसे हम तक ज़रूर पहुँचाना...

1. चन्दन के पेड़ में खूशबू कहाँ से आती है?

- राधिका, आठवीं, राजकीय हाई स्कूल, भितांई, पौड़ी गढ़वाल

जवाब - जहाँ से गुलाब और चम्पा में आती है। ज़मी को कई तरह से जादू आते हैं। ये भी उनमें से एक है।

2. पेड़ हरा क्यों है?

- याशी महेन्द्रा, आठवीं, डी.ए.वी, नई दिल्ली

जवाब - मुझे वही रंग अच्छा लगता था, इसलिए।

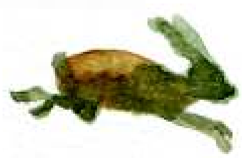

3. आप जब छोटे थे तो आपको कौन-सा खेल सबसे ज़्यादा पसन्द था?

- आयुषी नेमचौम, पाँच साल, लथॉउ यूथ लाइब्रेरी, अरुणाचल प्रदेश

जवाब - गुल्ली डण्डा।

4. नाखून बढ़ते ही क्यों हैं, यदि वे किसी काम के नहीं होते?

- अनुभव चमोली, पहली, केन्द्रीय विद्यालय, पौड़ी, उत्तरीखण्ड

जवाब - इसलिए तो बेचारे काट दिए जाते हैं, जो किसी काम के नहीं होते।

5. माँ के बिना घर क्यों अच्छा नहीं लगता?

– शबनम, पाँचवीं, हाजी पब्लिक स्कूल, बेर्सवाना, जम्मू कश्मीर

जवाब – अरे वही तो मौका होता है बदमाशियों का, जब माँ घर में नहीं होती।

6. बाकी सब छोड़कर आप “लेखक” ही क्यों बने?

– मुदित, पाँचवीं, हाजी पब्लिक स्कूल, बेर्सवाना, जम्मू कश्मीर

जवाब – मैकेनिक का काम बहुत मुश्किल था इसलिए।

7. इस दुनिया में सबसे महँगी चीज़ें कौन-सी हैं?

– अज़हर, पाँचवीं, हाजी पब्लिक स्कूल, बेर्सवाना, जम्मू कश्मीर

जवाब – अन्तरिक्ष में जानेवाला रॉकेट।

8. आपको अपने गाँव में सबसे अच्छा चीज़ क्या लगती थी?

– ऋतम्भरा मणि पुष्कर, सातवीं, सनरोज़ बीएचएस स्कूल, इलाहाबाद, उ.प्र.

जवाब – भैंस, दूध भी देती थी और गाँव भर घुमती भी थी।

9. हर एक फूल अलग-अलग रंग और खुशबू का कैसे हो जाता है?

– इशिता जैन, पाँचवीं, बालाजी इन्टरनेशनल स्कूल, मुम्बई

जवाब – बड़े चालाक हैं वो सब, ज़मीन जननी है और रंग आकाश से लेते हैं। सूरज से।

10. आपको बोली रंगोली की ड्रॉइंग सिलेक्ट करना ज़्यादा अच्छा लगता है या फिर अगर मगर के जवाब देना?

– अदिति साही, नवीं, डी.सी मॉडल स्कूल, पंचकुला, हरियाणा

जवाब – बोली रंगोली, उसमें मुझे कुछ नहीं करना होता। सब बच्चे करते हैं।

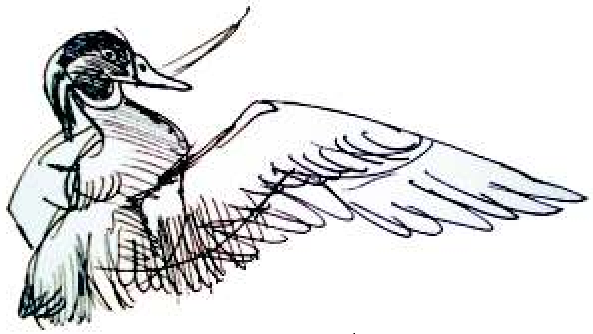

झील इसलिए सूख गई

प्रियम्वद

उसने मुझे देखा फिर सिर घुमाकर आँगन में लगे आँवले के पेड़ को देखने लगा। यह आखिरी दिसम्बर की ठण्डी रात थी। सड़क के किनारे पीली रोशनीवाले बल्ब जल चुके थे। ऊपर किले के बुर्ज पर, किसी गिलहरी की तरह चाँदनी पँजे टिकाने की कोशिश कर रही थी।

मैं राजस्थान के भरतपुर में था। भरतपुर की मशहूर झील में दूसरे देशों से आनेवाले पक्षी देखने आया था। दुनिया के दूसरे हिस्सों में कड़ी सर्दियाँ शुरू होते ही साइबेरिया और दूसरे ठण्डे देशों से, हज़ारों मील का सफर तय करके, तरह-तरह के पक्षी अपने बच्चों के साथ यहाँ आते हैं। सर्दियों तक रहते हैं। फिर सब लौट जाते हैं। सैकड़ों वर्षों से यह सिलसिला चल रहा है।

दोपहर को मैं झील पर गया था। झील में पानी बहुत कम था। पक्षी भी कम या नहीं के बराबर थे। उन्होंने शायद आना बन्द कर दिया था। मैं निराश हो गया।

"ऐसा क्यों है?" मैंने पास में घास काटनेवाले से पूछा।

"अब ऐसा ही है। पहले जैसी बात नहीं रही।"

"क्यों?"

"पता नहीं... इसका जवाब सिर्फ राजू के पास है।"

"कौन है यह?"

"किले के नीचे ढाल पर रहता है। किसी से पूछ लीजिए। बहुत सालों तक वह शिकार में राजाओं के साथ इस झील पर आया है। उसके पहले उसका पिता जाता था। वह झील के बारे में, चिड़ियों के बारे में सब जानता है। कभी-कभी हम लोगों को किस्से सुनाता है।"

रात को मैं राजू के पास आया था। किले के ठीक नीचे उसका पुराना छोटा घर था। उसके पुरखे पहले कभी किले में काम करते होंगे, इसीलिए रहने का घर मिला होगा। मैंने जब घर का दरवाज़ा खटखटाया, ठण्डी रात और सन्नाटे ने चारों ओर सब कुछ ढँक लिया था।

कुछ देर बाद दरवाज़ा खुला। सामने बूढ़ा-सा दिखता आदमी था। शरीर पर माँस नहीं था। आँखों में सफेद कीचड़ और चेहरे पर पीलापन था। वह चुपचाप मुझे देखता रहा।

"राजू?"

उसने सर हिलाया।

"मैं झील के बारे में बातें करने आया हूँ।"

उसने एक क्षण निगाह मुझ पर जमायी फिर एक ओर हट गया। मैं अन्दर आया। कोने में एक खाट पड़ी थी। उस पर बिस्तर रखे थे। दीवार के साथ फर्श पर चटाई बिछी थी। दीवार में बनी अलमारी में चीज़ें भरी थीं। अन्दर के छोटे कमरे में चूल्हा था। खाने के बर्तन पड़े थे। पार आँगन में आँवले का पेड़ था। राजू ने मुझे चटाई पर बैठाया। खुद भी दीवार के सहारे बैठ गया। मैंने अपने बारे में बताया। वह चुपचाप सुनता रहा फिर धीरे-से बोला, "यह झील इसलिए सूख गई है क्योंकि इसमें पानी से ज़्यादा लाखों मासूम, निरीह पक्षियों का खून गिरा है...।"

पेड़ पर कुछ देर निगाह टिकाने के बाद उसने वापस मेरी ओर देखा।

"मैं शिकार में उनके साथ जाता था। मुझ से पहले मेरे पिता जाते थे। वह झील, पेड़ों, चिड़ियों के बारे में सब जानते थे। कौन-सी चिड़िया किस देश से आई है... किसके कितने बच्चे हैं... सब। वे जानते थे कि पिता के बाद मैं भी हर झील, पेड़, चिड़िया के बारे में जानता हूँ। मुझे साथ रखते थे। मैं हाँक लगानेवालों का लीडर होता था।" दुख की बात है कि बहुत-से अँग्रेज़ वाइसरॉय और रियासतों के राजाओं ने, दूसरे देशों के बड़े लोगों ने भी, यहाँ हर साल हज़ारों पक्षियों को मारा है! 1 दिसम्बर 1902 को

चित्रः नीलेश गहलोत

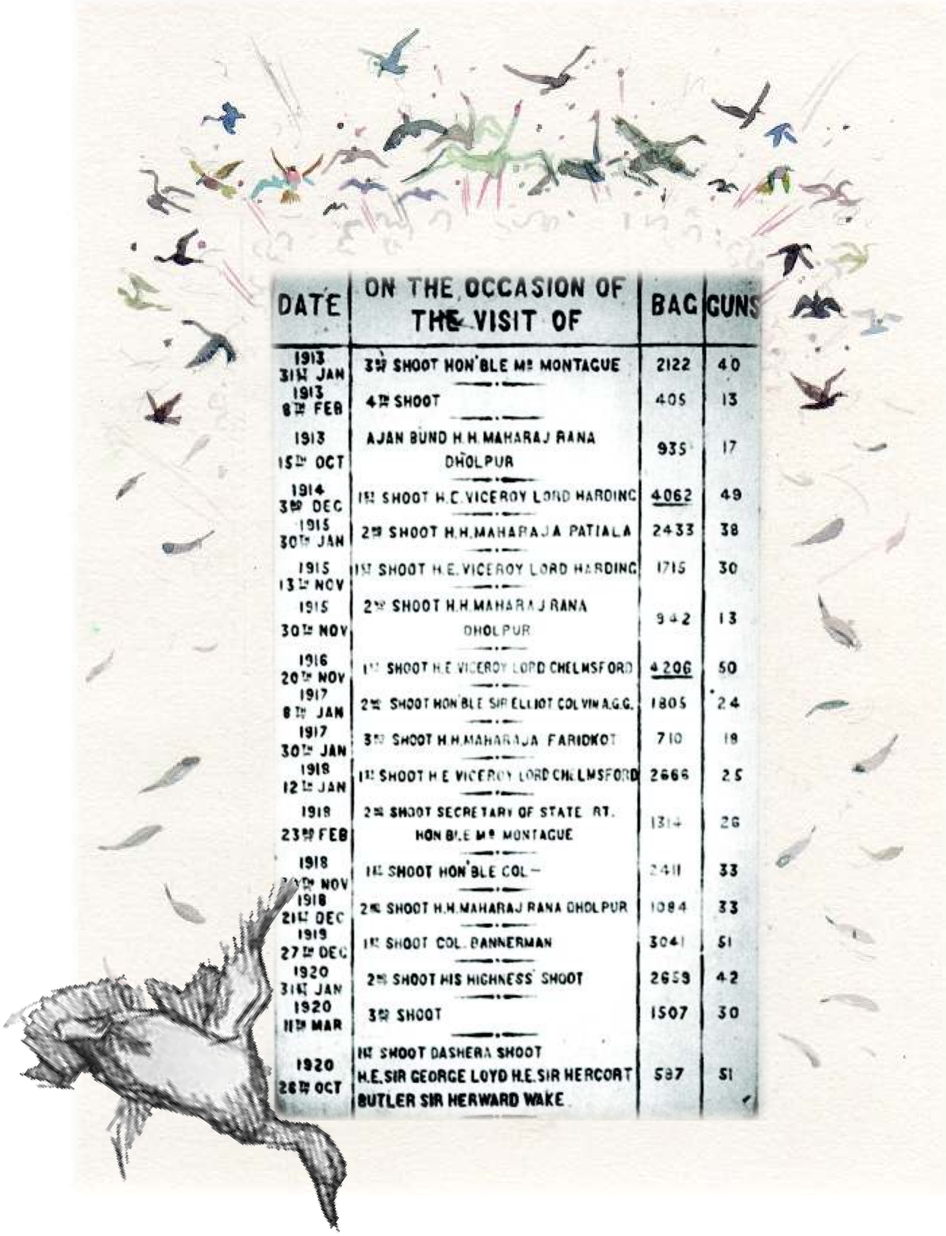

DATE	ON THE OCCASION OF THE VISIT OF	BAG	GUNS
1913 31ST JAN	3RD SHOOT HON'BLE MR MONTAGUE	2122	40
1913 8TH FEB	4TH SHOOT	405	13
1913 15TH OCT	AJAN BUND H.H. MAHARAJ RANA DHOLPUR	935	17
1914 3RD DEC	1ST SHOOT H.E. VICEROY LORD HARDING	4062	49
1915 30TH JAN	2ND SHOOT H.H. MAHARAJA PATIALA	2433	38
1915 13TH NOV	1ST SHOOT H.E. VICEROY LORD HARDING	1715	30
1915 30TH NOV	2ND SHOOT H.H. MAHARAJ RANA DHOLPUR	942	13
1916 20TH NOV	1ST SHOOT H.E. VICEROY LORD CHELMSFORD	4206	50
1917 8TH JAN	2ND SHOOT HON'BLE SIR ELLIOT COLVIN A.G.G.	1805	24
1917 30TH JAN	3RD SHOOT H.H. MAHARAJA FARIDKOT	710	18
1918 12TH JAN	1ST SHOOT H.E. VICEROY LORD CHELMSFORD	2666	25
1918 23RD FEB	2ND SHOOT SECRETARY OF STATE RT. HON'BLE MR MONTAGUE	1314	26
1918 [illegible]TH NOV	1ST SHOOT HON'BLE COL –	2411	33
1918 21ST DEC	2ND SHOOT H.H. MAHARAJ RANA DHOLPUR	1084	33
1919 27TH DEC	1ST SHOOT COL. BANNERMAN	3041	51
1920 31ST JAN	2ND SHOOT HIS HIGHNESS' SHOOT	2659	42
1920 11TH MAR	3RD SHOOT	1507	30
1920 28TH OCT	1ST SHOOT DASHERA SHOOT H.E. SIR GEORGE LOYD H.E. SIR HERCORT BUTLER SIR HERWARD WAKE	587	51

वाइसरॉय कर्जन शिकार करने आया था। मेरे पिता साथ गए थे। तब से उन्होंने हर साल का हिसाब लिख रखा है। 1964 तक यह शिकार चला। आखिरी शिकार सेना के जनरल चौधरी ने 23 फरवरी 1964 में किया था। 51 बन्दूकों के साथ 556 चिड़िया मारी थीं। मैं उसमें था। मुझे साथ रखते थे। चुप होकर उसने एक साँस ली फिर बोलने लगा, “आप विश्वास नहीं करेंगे पर 1902 से 1964 तक एक लाख चौतीस हज़ार दो सौ सत्तासी (1,34,287) चिड़ियों को मारने का हिसाब तो है। कुल 4067 बन्दूकों के साथ। यह सब खेल तमाशे की तरह होता था। हर साल की सर्दियों में चिड़ियों की हत्याएँ करनेवाले आते थे। हम सब जाते। उस भयानक सर्दी और ठण्डी झील में कमर तक पानी में खड़े रहना पड़ता था। जब सब तैयारी हो जाती, तब इशारा होता। हम तेज़ी-से ढोल बजाते, नगाड़े पीटते, शोर मचाते, चीखते थे। चिड़ियाँ घबराकर उड़ती थीं। अपने बच्चों, अण्डों, घोंसलों को छोड़कर। आसमान उनकी चीख-पुकार से भर जाता। इसी के साथ बन्दूकों के गरजने की लगातार आती आवाज़ें होतीं। पतझर में सूखे पत्ते इस तरह नहीं गिरते जिस तरह आसमान से घायल, मरी हुई चिड़ियाँ टपकती थीं।”

वह एक झटके-से चुप हो गया। कुछ देर बाँह पर सर झुकाए बैठा रहा। फिर सर उठाकर मुझे देखा, “एक दिन में सबसे ज़्यादा चिड़िया 20 नवम्बर 1916 को वाइसरॉय चेम्सफोर्ड ने मारीं। 50 बन्दूकों के साथ। 12 नवम्बर 1938 को वाइसरॉय लिनलिथगो ने एक ही दिन में दो बार शिकार किया। सुबह 3044 चिड़ियाँ मारीं और शाम को 1229 – कुल 4273 चिड़ियाँ। 39 बन्दूकों के साथ। 20 दिसम्बर 1926 को पटियाला, धौलपुर, अलवर, भोपाल, रतलाम और मण्डी के राजाओं ने मिलकर 60 बन्दूकों के साथ 2318 चिड़ियाँ मारीं।” उसने कुछ गहरी साँसें लीं फिर उदास आवाज़ में बोला, “जब मैं शिकार से लौटता था, पक्षियों की चीख पुकार, खून से मुक्त होने के लिए दो दिन जंगल में पड़ा रहता था। वहाँ मुझे पता चला कि धरती पर सबसे सुन्दर आवाज़ चुप्पी की है। सबसे गन्दी आवाज़ डरी हुई चीख की है। अच्छा हुआ झील सूख गई। पक्षी भी सब समझते हैं।” वह उठा। एक पुराना टीन का बक्सा खोला। उसके अन्दर से एक रजिस्टर निकालकर मुझे दिया।

(शेष भाग पेज 39 पर)

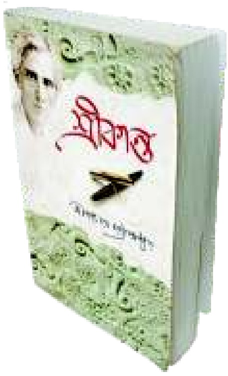

शरतचन्द्र

शरतचन्द्र के मशहूर उपन्यास श्रीकान्त का एक अंश

वो पढ़ाई के दिन...

छोटे भइया जतीन और मैं क्रमशः तीसरी और चौथी कक्षा में पढ़ते थे और गम्भीर स्वभाववाले मझले भइया दो बार एन्ट्रेंस में फैल होकर तीसरी बार की तैयारी में लगे थे। उनके कठोर शासन में किसी को एक मिनट का भी समय बरबाद करने की हिम्मत नहीं होती थी।

हम लोगों के पढ़ने का समय होता था – साढ़े सात से नौ बजे तक। इस वक्त बातचीत कर हम उनकी "पास होने" की पढ़ाई में खलल न डाल सकें, इसलिए उन्होंने कैंची से काट-काटकर कागज़ के पच्चीस-तीस टिकटनुमा टुकड़े रख छोड़े थे। उनमें से किसी में लिखा होता, "बाहर जाना है", किसी में "थूकना है", किसी में "नाक साफ करनी है", किसी में "पानी पीना है" आदि।

जतीन भइया ने नाक साफ करने का एक टिकट मझले भइया के आगे पेश किया। मझले भइया ने उस पर अपने हाथ से लिख दिया, "आठ बजकर तैंतीस मिनट से लेकर आठ बजकर साढ़े तैंतीस मिनट तक।" यानी इतने समय के लिए नाक साफ करने जा सकते हैं।

छुट्टी पाकर जतीन भइया टिकट हाथ में लेकर निकले ही थे कि छोटे भइया ने "थूकने जाने" का टिकट पेश कर दिया। मझले भइया ने उस पर "नहीं" लिख दिया। इस पर छोटे भइया दो मिनट तक मुँह फुलाए बैठे रहे फिर उन्होंने पानी पीने की अर्ज़ी दाखिल कर दी। इस बार वह मंज़ूर हो गई। मझले भइया ने इस के लिए लिखा, "हाँ, 8 बजकर 41 मिनट से लेकर 8 बजकर 47 मिनट तक।" छुट्टी पाकर छोटे भइया ज्यों ही हँसते हुए बाहर निकले त्यों ही जतीन भइया ने लौटकर अपने हाथ का टिकट वापस दे दिया। मझले भइया ने घड़ी देखकर और समय मिलाकर एक रजिस्टर बाहर निकाला और उस में वह टिकट गोंद से चिपका दिया।

यह सारा सामान उन के हाथ की पहुँच के अन्दर ही रखा रहता था। हफ्ते-हफ्ते होने पर इन सब टिकटों को सामने रखकर जवाब तलब

(शेष भाग पेज 21 पर)

चित्रः मयूख घोष

किस्त -2

पुड़ियों की गली

कृष्ण कुमार

"ये बात मैडम ने कही या तूने?" राधा ने पूछा। एक क्षण के लिए पुष्पा रुकी फिर बोली, "मैं कहती हूँ... तूने शर्त लगाई है कि नहीं?"

"किस बात की शर्त?"

"अगर यह बस सही-सलामत निवाड़ी पहुँच गई तो मेरी हार।"

पुष्पा की बात पूरी सुने बिना राधा ने कहा, "तू सोचती है कि हम लोग निवाड़ी नहीं पहुँचेंगे?"

"बस टकरा जाएगी।" पुष्पा ने एकदम ठण्डे भाव से कहा।

"हट! मैं तेरी शिकायत बड़ी बहनजी से लगाती हूँ।"

बड़ी बहनजी से शिकायत की बात सुनकर पुष्पा एकदम डर गई। फिर थोड़ा सम्भलकर उसने राधा का मुँह पकड़ लिया और बोली, "बड़ी बहनजी के पास गई तो ठीक नहीं होगा। तू मुझसे शर्त क्यों नहीं लगाती?"

"किस बात की शर्त?" राधा ने मुँह छुड़ाते हुए पूछा।

"अगर बस सही-सलामत पहुँच गई तो मैं तुझे अपनी काँचवाली डिब्बी दे दूँगी।" पुष्पा ने घोषणा के अन्दाज़ में कहा।

"काँचवाली डिब्बी!" सुनकर राधा स्तब्ध रह गई। उस डिब्बी जैसी कोई चीज़ राधा ने दुनिया में नहीं देखी थी। चमकते हुए पीतल के फ्रेम में जड़ी हुई काँच की डिब्बी में पुष्पा ने अपनी सुन्दर चीज़ें रख छोड़ी हैं – दो मोती, काले लाल गुँचू, एक नन्हा-सा हरा-नीला पंख और एक सूखा हुआ पीला गुलाब। इतनी सुन्दर डिब्बी वो मुझे दे देगी। राधा को इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। पुष्पा उस डिब्बी को किसी को हाथ भी नहीं लगने देती थी। कहती थी, "उँगली का निशान पड़ जाएगा।"

डिब्बी को पुष्पा अपने कपड़ों के बक्से में सबसे नीचे रखती थी। राधा अकसर पुष्पा के घर जाती थी पर डिब्बी देखने का मौका उसे बहुत कम मिलता था। छूने का मौका तो उसे आज तक नहीं मिला था।

"तू क्या सोच रही है? तू सोच रही है मैं डिब्बी नहीं दूँगी।" पुष्पा ने राधा की आँखों में झाँकते हुए कहा, "दूँगी, दूँगी, सचमुच दूँगी। पर मैं जीत गई तो तू क्या देगी।"

क्लास अभी खाली थी। आधी छुट्टी खत्म होनेवाली थी, पर ज़्यादातर लड़कियाँ घण्टी बजने पर ही आती थीं। क्लास के बाहर बरामदे में काफी शोर मच रहा था। कुछ लड़कियाँ आँगन में अशोक के पेड़ों के नीचे बैठकर घर से लाया हुआ नाश्ता खा रही थीं। क्लास की दूसरी तरफ खिड़की थी जिसकी सलाखों से परी की बेल लिपटी हुई थी। उसके लाल कागज़ी फूल भीतर झाँक रहे थे। राधा की आँखें जैसे किसी चीज़ पर टिक नहीं पा रही थीं। पुष्पा की बात सुनकर वह छत की तरफ सर घुमाकर बोली, "मैं? मैं क्यों दूँ? मैं तेरी जैसी पागल नहीं हूँ।"

"पागल।" पुष्पा ने कहा, "मैं पागल नहीं हूँ। मुझे पता है क्या होगा। बस तेज़-तेज़ भागेगी और धड़ से टकरा जाएगी एक पेड़ से या किसी ट्रक से। हम सब घायल हो जाएँगे। चार-छह लड़कियाँ मर जाएँगी!"

राधा लगभग चीखते हुए बोली, “तू चुप होती है कि नहीं, पुष्पा? मैं अभी बड़ी बहनजी से कहती हूँ। बोल, कहूँ?”

पुष्पा कुछ सहम-सी गई। राधा ने उसकी आँखों की तरफ देखा। राधा को लगा, पुष्पा की आँखों में एक अजीब-सी किरण चमक रही है। उनकी तीन साल की दोस्ती में यह चमक राधा ने कई बार देखी थी। जब पुष्पा की आँखें इस तरह चमकती थीं तो लगता था जैसे उसे कोई विशेष बात मालूम है। पुष्पा को भविष्यवाणी करने का शौक था। बिलकुल किसी ज्योतिषी की तरह बोलने का। राधा को अपनी सहेली के मुँह से ऐसी बातें सुनने की आदत-सी पड़ गई है। उसे पता है कि पुष्पा के घर पर ऐसी ही बातें होती रहती हैं। पुष्पा की माँ जब देखो, कोई न कोई उपवास कर रही होती हैं और पिताजी अकसर किसी अनिष्ट को टालने की चिन्ता में खोए नज़र आते हैं। अभी पिछले शनिवार को उन्होंने एक कटोरे में तेल डालकर कटोरा एक भिखारी को दे दिया था। पुष्पा ने बताया था कि कटोरा देने के पहले पिताजी ने तेल में अपनी छाया अच्छी तरह देख ली थी। उनका मानना था कि ऐसा करने से कोई दुर्घटना, जिसके होने की पूरी सम्भावना थी, अब नहीं होगी।

राधा को ये सारी बातें बकवास लगती थीं, लेकिन उसकी एक दिक्कत यह थी कि पुष्पा की अनाप-शनाप भविष्यवाणियों में से कोई-कोई बात सही भी निकल आती थी। अभी कुछ दिन हुए, छमाही इम्तहान के हफ्ता भर पहले प्रार्थना गाकर लौटते समय उसने आशा से कहा था कि वह इम्तहान के समय बीमार पड़ जाएगी। हुआ भी यही। अँग्रेज़ी के पर्चे के दिन आशा को बुखार चढ़ गया।

टन! टन! टन! टन!.... आधी छुट्टी पूरी होने की घण्टी बज उठी। अगली घण्टी संगीत की थी जिसे प्रमोद सर लेते थे। लेकिन क्लास में नहीं, संगीत रूम में। स्कूल के आँगन के एक कोने में मौलश्री और शिरीष के ऊँचे पेड़ों में छिपे संगीत रूम से दिन भर सा...रे...ग...म... की आवाज़ निकलती रहती थी। किसी-किसी घण्टी में गाना भी सुनाई देता। गाने दो ही थे जिन्हें गाते-गाते लड़कियाँ तंग आ जातीं मगर प्रमोद सर इन्हीं दो गानों को संगीत शिक्षा का सार मानते थे। पहला गाना स्कूल के आँगन में कुछ इस तरह सुनाई देता था।

जाग उठे सब जन तुम जागो

दूसरा गाना था

कैसी रे भलाई रे कन्हाई
पनिया भरत मोरी गगरी गिराई
करत लराई
सनद कहे ऐसी ढीठ भयो कन्हाई
का करूँ माई, नहिं मानत कन्हाई
करत लराई...

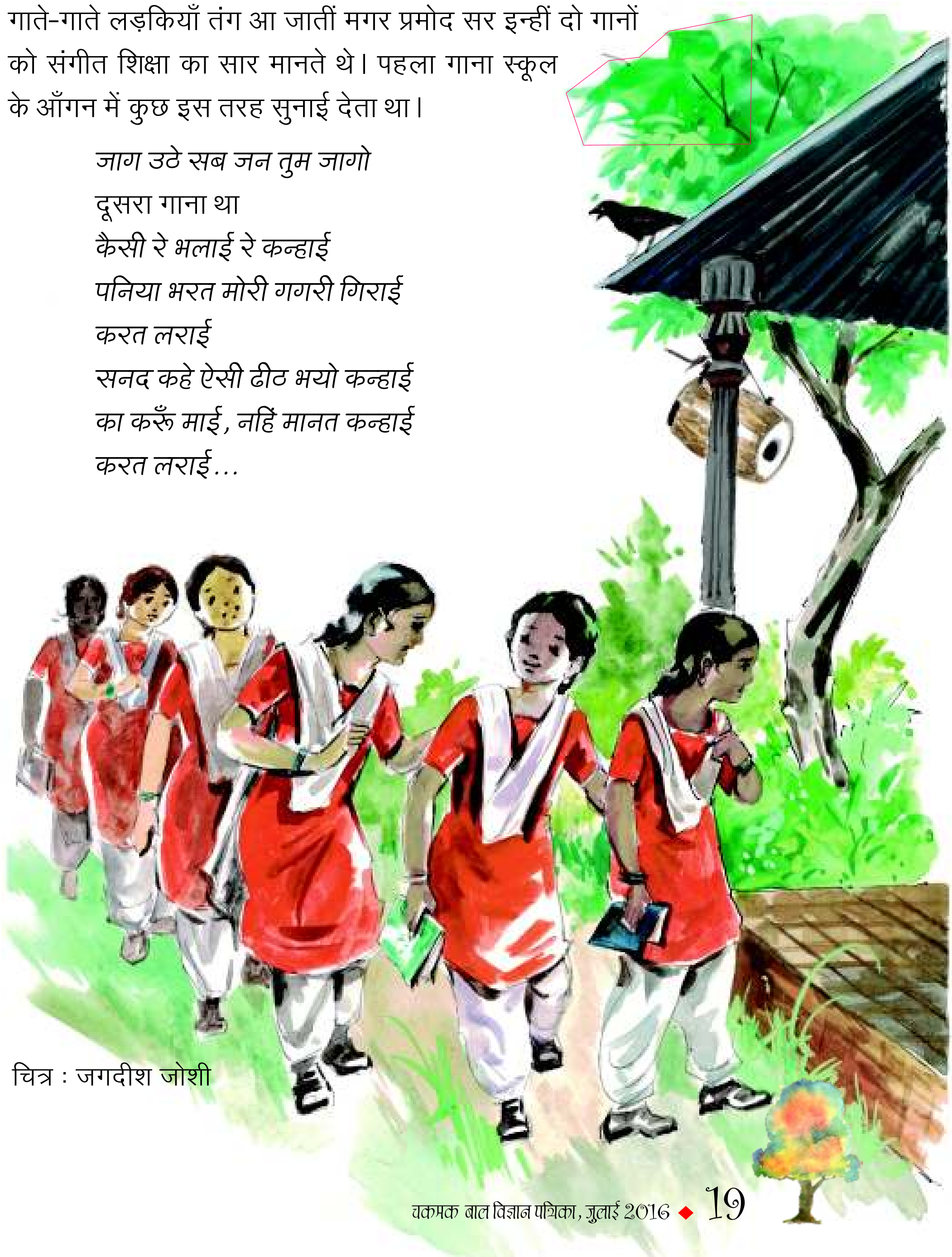

चित्र : जगदीश जोशी

संगीत की घण्टी के लिए लाइन बनाकर जाना पड़ता था। थोड़ी-बहुत चुहलबाज़ी होती थी, खासकर क्लास से निकलते समय। एक बार पूरी लाइन आँगन में पहुँच गई तो फिर शान्ति बनाए रखना ज़रूरी हो जाता था क्योंकि आँगन से गुज़रते समय हर किसी को बड़ी बहनजी की निगाह पड़ जाने का डर रहता था। और स्कूलों की प्रिंसिपलों की तरह बड़ी बहनजी किसी ऑफिस में नहीं बैठती थीं।

उन्होंने अपना ऑफिस आँगन के ही एक कोने में अशोक के ऊँचे पेड़ की छाया में एक बड़ी-सी मेज़ और चार कुर्सियाँ डालकर बना लिया था। इसी खुले ऑफिस से वो सारे स्कूल पर निगाह रखती थीं। मेज़ पर रखी हुई स्टील की घण्टी पर बड़ी बहनजी का हाथ पड़ता और तिजिया तुरन्त कहीं से निकलकर हाज़िर हो जाती।

सातवीं "सी" की लाइन आँगन से गुज़रकर संगीत रूम की तरफ बढ़ रही थी। पुष्पा से रहा नहीं जा रहा था। उसने अपने ठीक आगे चल रही राधा से पूछा, "राधा, अगर अपने स्कूल की बस निवाड़ी नहीं पहुँची तो तू मुझे क्या देगी?"

"यह हो ही नहीं सकता," राधा बोली। "बस ज़रूर पहुँचेगी।"

"फिर तुझे शर्त लगाने से क्या डर है? मैं जो माँगूँ तू मान ले।"

राधा ने पलटकर पुष्पा को देखा और एक क्षण के लिए सोचा, "पुष्पा ठीक ही तो कह रही है, मुझे क्या डर है! फिर उसे यह भी ध्यान में आया कि बड़ी बहनजी ने खुद ही पुरानी बस को ठीक कराने की योजना बनाई है तो वह ज़रूर लड़कियों के साथ जाएँगीं।

और स्कूलों की प्रिंसिपलों की तरह बड़ी बहनजी किसी ऑफिस में नहीं बैठती थीं।

उनके साथ रहते किस बात की चिन्ता? शर्त हारने की नौबत नहीं आएगी। ऐसा मन बनाकर उसने कुछ हौंसले के साथ पूछा, “बोलो क्या चाहिए?” पुष्पा तो जैसे अपनी माँग बहुत पहले से सोचकर बैठी थी। तपाक से बोली, “अगर तू हार गई तो मुझे तेरी फूलोंवाली एलबम चाहिए।”

राधा यह सुनकर एकदम भौंचक्की रह गई। एलबम उसने छठी में बनाई थी। उसमें कोई तीस फूलों के चित्र थे जो राधा ने बड़ी मेहनत से बनाए थे। हर चित्र के नीचे असली फूल सुखाकर टाँका गया था। जब भी पुष्पा राधा के घर आती थी, इस एलबम को निकलवाकर अवश्य देखती थी। सुखाकर टाँके गए हर फूल को वह छूकर देखती थी। फूलोंवाली एलबम पुष्पा को इतनी अच्छी लगती है, यह सोचकर राधा को अपनी एलबम पर गर्व हो आता था। अब अचानक इस एलबम को दाँव पर लगा देने की बात सोचकर उसे घबराहट महसूस हुई। एक क्षण में उसे पुष्पा की शर्त का पूरा मतलब समझ में आ गया। गणित के सवाल की तरह उसने शर्त का हिसाब मन में दोहराया, “दुर्घटना होती है तो एलबम पुष्पा को मिलगी, नहीं होती है तो पुष्पा की काँच की डिब्बी मुझे मिल जाएगी।” तभी उसे ध्यान आया कि यदि सचमुच दुर्घटना होती है तो उसमें कौन बचेगा, कौन नहीं, इस बात का क्या भरोसा है? शायद हम दोनों ही न बचें। यह सोचकर उसे थोड़ी राहत मिली और लगा कि उसके दोनों पलड़े भारी हैं। वह अपनी घबराहट छिपाकर बोली, “तुम्हें एलबम चाहिए? ठीक है, मैं दे दूँगी।”

कतार का अगला सिरा संगीत रूम में दाखिल हो चुका था। संगीत रूम में घुसकर कोई बात करना असम्भव होता था। फूलोंवाली एलबम के लिए राधा की स्वीकृति इतनी आसानी से पाकर पुष्पा काफी चकित लेकिन पूरी तरह सन्तुष्ट थी। अब तो बस संगीत रूम की विशाल दरी पर बैठना और गाना शेष था।

अगले अंक में जारी

वो पढ़ाई के दिन...

(पेज 17 का शेष भाग)

किया जाता था कि अमुक दिन क्यों तुम ने अनुमति से अधिक समय लगा दिया।

इस प्रकार मझले भइया की सतर्कता से हमारा और उनका खुद का भी समय बर्बाद नहीं हो पाता था। इस तरह हर दिन डेढ़ घण्टे खूब पढ़ लेने के बाद जब नौ बजे रात को हम लोग घर में सोने आते तो निश्चय ही सुरमती माई हमें घर की चौखट तक पहुँचा जाती थीं, और दूसरे दिन स्कूल से जो सम्मान-सौभाग्य पाकर हम घर लौटते थे वह तो आप समझ ही गए होंगे। किन्तु मझले भइया का दुर्भाग्य कि उन के मूढ़ परीक्षक उन्हें कभी न पहचान पाए। वे अपनी तथा दूसरे की शिक्षा-दीक्षा का इतना ख्याल रखते और समय की कीमत के मामले में अपनी ज़िम्मेदारी इतने ध्यान से निभाते थे, फिर भी वे उन्हें बार-बार फेल करते चले गए। खैर, जाने दो अब उसके लिए दुखी होने से ही क्या फायदा?

उस रात भी घर के बाहर वही गहरा अँधेरा, बरामदे में नींद में डूबे वे ही दोनों बूढ़े और भीतर दीए की मन्द रोशनी में गम्भीर अध्ययन में जुटे हम चार लोग थे।

छोटे भइया के लौटने पर प्यास के मारे मेरी छाती एकबारगी फटने लगी। इसलिए टिकट पेशा कर मैं इजाज़त का इन्तज़ार करने लगा। मझले भइया उसी टिकटोंवाले रजिस्टर के ऊपर झुककर परीक्षा लेने लगे कि पानी पीने के लिए मेरा जाना नियम संगत है या नहीं, यानी कल-परसों किस मात्रा में पानी पिया था।

दाल नहीं गलता तो किसकी गलती है?

रमाकान्त अग्निहोत्री

भाषा में लिंग व्यवस्था को लेकर अकसर परेशानी रहती है। यह तो लोग मानकर ही चलते हैं कि हर भाषा में हर शब्द का कोई लिंग होगा – पुलिंग, स्त्रीलिंग या फिर नपुन्सक लिंग। अँग्रेज़ी में भी ऐसा ही होगा यह भी लोग मान लेते हैं। और अगर आप उन्हें उदाहरण के लिए पूछें तो तपाक जवाब मिलेगाः किंग-कुइन (king-queen), एक्टर-एक्ट्रेस (actor-actress), अंकल-आँट (uncle-aunt), प्रिंस-प्रिंसेस (prince-princess) आदि। लेकिन क्या वाक्य में इन शब्दों का प्रयोग करने से कोई अन्तर पड़ता है? अँग्रेज़ी के कुछ वाक्य देखेंः

1. द किंग इज़ ईटिंग एन ऐपल। (The king is eating an apple.)

2. द कुइन इज़ ईटिंग एन ऐपल। (The queen is eating an apple.)

3. माई अंकल इज़ रीडिंग ए बुक। (My uncle is reading a book.)

4. माई आँट इज़ रीडिंग ए बुक। (My aunt is reading a book.)

भई, अब ऐसा तो नहीं कह सकते अँग्रेज़ी मेंः

5. माई आँट इज़ रीडिंगी ए बुक।

सब हँसेंगे। चाहे लड़का रोए या लड़की, अँग्रेज़ी में तो यह ही कहेंगेः

6. द बॉय/ द गर्ल इज़ क्राईंग। (The boy/ girl is crying.)

"इज़ क्राईंग" (is crying) की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ता, चाहे लड़का रोए या लड़की।

तो अँग्रेज़ी में तो कोई लिंग व्यवस्था है नहीं। हाँ, लोगों के नाम पुलिंग या स्त्रीलिंग हो सकते हैं। मोहन की बात होगी तो "ही" (he) का प्रयोग होगा और यदि राधा की बात होगी तो "शी" (she) का प्रयोग होगा। बस इतना ही। कोई व्याकरणगत लिंग व्यवस्था अँग्रेज़ी में नहीं। जब कोई नया शब्द अँग्रेज़ी भाषा में आता है तो लोगों को यह निश्चित नहीं करना पड़ता कि वह पुलिंग है या स्त्रीलिंग। इसमें कोई विशेष हैरान होने की बात नहीं है। दुनिया में कई ऐसी भाषाएँ हैं जिनमें कोई भी व्याकरणगत लिंग व्यवस्था नहीं है। अपने ही देश में बांग्ला तथा और भी कई। तुर्की, थाई, कोरियन और फारसी में भी कुछ ऐसा नहीं है।

चित्रः शोभा घारे

लेकिन हिन्दी की बात कुछ अलग है। हिन्दी में तो आप संज्ञा का "पुरुष" (उत्तम, मध्यम या अन्य), वचन (एकवचन या बहुवचन) और लिंग (पुलिंग या स्त्रीलिंग) जाने बिना क्रिया को हाथ नहीं लगा सकते। और कई बार तो विशेषण को भी नहीं। "अच्छा लड़का" पर "अच्छी लड़की"। पुरुष और वचन की बात फिर कभी। अभी तो केवल लिंग की बात चल रही है। हिन्दी में हर संज्ञा पुलिंग या स्त्रीलिंग होती है गोया यह बताना बहुत कठिन है कि किस नियम के आधार पर संज्ञा पुलिंग होगी या स्त्रीलिंग। जब भी कोई नियम बनाने बैठो तो कई अपवाद सामने आ जाते हैं। सच बात तो यह है कि हिन्दी भाषी समुदाय बातचीत के दौरान किसी संज्ञा को पुलिंग तो किसी को स्त्रीलिंग बना देता है। वैसे तो भाषा लगभग हर स्तर पर नियमबद्ध होती है पर कुछ ऐसे आयाम हैं जहाँ फैसला आवाम के हाथ में रहता है। पर यह भी सच है कि ऐसे नियमों के अकसर अपवाद मिलते हैं।

बाल कबीले का लोकगीत

हेमन्त देवलेकर

एक नियम यह बताता है कि:

क. पुरुष/नर है तो पुलिंग, स्त्री/मादा तो स्त्रीलिंग।

बहुत स्वाभाविक-सी बात लगती है। अकसर सही भी होती है। "घोड़ा" पुलिंग है और "मोरनी" स्त्रीलिंग। पर "चीता" चाहे नर हो या मादा पुलिंग ही होता है। और "कोयल" सदा स्त्रीलिंग ही। "भीड़" औरतों की हो या आदमियों की स्त्रीलिंग ही होती है।

एक और नियम देखिए। यह कहा जाता है कि:

ख. आकारांत शब्द पुलिंग होते हैं।

"कमरा", "घड़ा", "गाना" आदि तो सचमुच पुलिंग हैं। पर "हवा", "माला", "चिड़िया" आदि के बारे में आपका क्या विचार है? "कमरा" तो "छोटा" होता है पर "चिड़िया" तो "छोटी" होती है।

अगर आप सबको इन सब बातों को पढ़कर कुछ मज़ा आया हो तो अगले अंक में विस्तार से हिन्दी में लिंग व्यवस्था की चर्चा करेंगे।

टुइयाँ गुइयाँ
ढेम्पूला की चुइयाँ
बैंगी पुँगी चिक्कुल भाकी
नक थुन धाकी भुइयाँ
अब दुन भेला ठुन ठुन केला
बीन भनक्कम पुइयाँ
हगनू पटला झपड़ तो बटला
शुकमत टमटम ठुइयाँ
गझगन चिम्बू छुकछुन लिम्बू
झलबुल टोला ढुइयाँ
टुइयाँ गुइयाँ
किंचुल गोला मुइयाँ।

सतपेड़ा

प्रयाग शुक्ल

चित्रः नीलेश गहलोत

हम बिलकुल सुबह उठ जाते। सतपेड़ा की ओर भागते। देखें कौन जल्दी पहुँचता है! हमारे साथ में झोले होते। उनके पास पहुँचते ही सतपेड़ा की फैली हुई डालियों के आम झलक उठते। हम खुश हो जाते। पहले यह जाँच लेते कि ज़मीन पर भी काफी आम हैं या नहीं? अगर रात को सतपेड़ा से पके हुए आम टपक-कर ज़मीन पर पड़े होते तो हम पहले उन्हें ही उठाते। अपने-अपने झोलों में रखते। कमाल यह कि सबके झोलों में कई रूप-रंगों वाले आम होते! कैसा जादू था यह! एक ही पेड़ में कई तरह के आम! कोई लम्बा, कोई गोल, कोई चपटा-सा! लेकिन ऐसा ही तो था! ज़मीन पर गिरे हुए आमों को बीनकर, हम सतपेड़ा के ऊपर चढ़ जाते। ऊपर चढ़कर पके हुए आमों को टटोलते, और उन्हें झोले में भर लेते। कुछ तो हाथ लगाते ही झोले के खुले मुँह में टपक पड़ते। उस पेड़ पर चढ़ना आसान था। उसकी डालियाँ ज़मीन से बहुत ऊपर नहीं थीं। दो-एक तो पास के खेत की मेड़ पर बिलकुल झुकी हुई थीं। वैसे भी पेड़ पर चढ़ना हम अच्छी तरह सीख गए थे। गर्मियों में हम शहर से अपने गाँव आते तो हमारा काम यही तो होता था – पेड़ पर चढ़ना, तैरना, खेलना, कभी गिलहरियों को दौड़ते हुए देखना, कभी किसी बर्र को धागे में बाँधकर उड़ाना! हम कुछ सगे और चचेरे भाइयों का शहर से आना, पूरा गाँव जान जाता। हम पूरा एक महीना वहाँ रहते थे। धमाचौकड़ी खूब मचाते थे। सतपेड़ा के अलावा पेड़ और भी थे, जैसे “गोलवा”। उसका यह नाम पड़ा था तो इसलिए कि उसके आम बड़े गोल-मटोल होते थे। लेकिन भाई सतपेड़ा की बात ही कुछ और थी। चढ़ते हम एक पेड़ पर थे, झोले में आम सचमुच कई तरह के भर लेते थे। कई रूपों-रंगों वाले, सचमुच। न जाने, कब कैसे यह हुआ था कि एक ही जगह पर आमों की सात गुठलियाँ पड़ीं। सात पौधे उगे। सात पेड़ बने। और बना सतपेड़ा। सब पेड़ों के तने आपस में ऐसे मिल गए कि उनके मिलने से बन गया एक बड़ा-सा तना। हमने भी बहुत बाद में ही जाना था कि ये पेड़ सात भाई हैं, रहते एक साथ हैं। सतपेड़ा से हमने केवल आम बीने हों, सो बात नहीं। हम उसकी डालियों पर झूले और चढ़े-उतरे भी खूब। उसकी डालियों पर चढ़तीं-कूदतीं गिलहरियाँ भी देखीं और चिड़ियाँ भी तो उस पर बहुत-सी आती थीं।

एक बार तो उस पर बौर भी बहुत-से देखे थे। बौरों ने उसके पत्तों-डालियों को कुछ ऐसा छा लिया था कि वह पेड़ उन्हीं बौरों से बना एक बहुत बड़ा फूल मालूम पड़ता था। कई बार हम लोगों ने यह सोचा कि सतपेड़ा के सातों पेड़ों को हम अलग-अलग नाम दे दें, पर, हमें वैसा करना ठीक नहीं लगा। सात पेड़ोंवाला यह “सतपेड़ा” नाम ही हमें बहुत अच्छा जो लगने लगा था। और भाई, हम अलग-अलग नाम देते भी तो कैसे, सातों पेड़ों की डालियाँ आपस में लिपट-सी गई थीं। और तने भी अलग-से कहाँ नज़र आते थे। एकाध बार हम बारिश के दिनों में भी गाँव गए थे। बारिश इतनी थी कि सतपेड़ा के नीचे खूब पानी भर गया था। एक छोटा-मोटा तालाब ही तो बन गया था वहाँ! हमने उसे कुछ दूर से देखा और सोचा कि सतपेड़ा गर्मियों में तपता है। *(शेष भाग पेज 31 पर)*

माथापच्ची

1

प्रवासी पक्षियों के झुण्ड को उड़ते देखा है? वे उड़ते हैं तो लगता है कि आसमान में अँग्रेज़ी अक्षर V की आकृति उड़ी जा रही है। क्या खूबसूरत होता है उन्हें देखना! पर अप्रवासी पक्षियों के झुण्डों को उड़ते देखो तो ऐसा नहीं होता। यानी वे ऐसे नहीं उड़ते। क्यों?

चित्रः जगदीश जोशी

2 यदि एक दिन के लिए हमें सुनाई देना बन्द हो जाए तो क्या होगा?

3

ज़ेनी ने साहिल को तीन गत्ते के बक्से दिखाए और बोली इन तीनों में से किसी एक में खिलौने हैं। हर बक्से के ऊपर चिप्पी लगी है जिसमें कुछ लिखा है। तीनों में से केवल एक ही चिप्पी सही है।

चिप्पी 1: खिलौने इस बक्से में हैं।

चिप्पी 2: इस बक्से में खिलौने नहीं हैं।

चिप्पी 3: खिलौने पहले बक्से में नहीं है।

यदि इसके आधार पर तुम सही बक्सा चुन सको तो सारे खिलौने तुम्हारे। क्या सही बक्सा चुनने में तुम साहिल की कुछ मदद कर सकते हो?

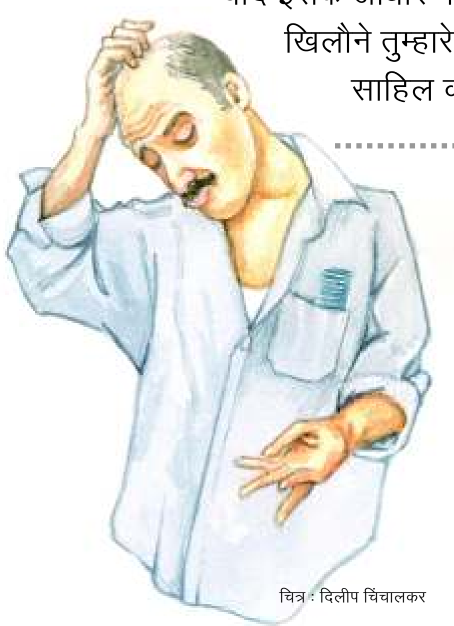

चित्र : दिलीप चिंचालकर

4 एक आदमी के सिर पर कितने बाल होते होंगे? कहते हैं लगभग डेढ़ लाख। और एक महीने में कितने बाल झड़ जाते होंगे? अंदाज़ा लगाया 3000 बाल। हमारे पास ये दो जानकारियाँ हैं। क्या हम इन दो जानकारियों की मदद से बता सकते हैं कि एक बाल की औसत उम्र कितनी होती होगी?

सूफी मुस्तफा तबस्सुम की तीन पहेलियाँ

मेरी पहेली बूझोगे तुम
एक इंच की चिड़िया
दो गज की दुम

बात अनोखी क्या कोई जाने
एक डिबिया में सैंकड़ों दाने
मीठे-मीठे रंग-रंगीले
रसभरे रसदार रसीले
कोई चूसे कोई चबाए
बच्चा-बूढ़ा हर एक खाए

नाजुक-सी एक गुड़िया
लोग कहें सब उसको उड़िया
कागज़ के सब कपड़े पहने
धागे के सब जेवर गहने
सीधी जाए मुड़ती जाए
परी नहीं पर उड़ती जाए

अजीब कोना

पता नहीं घर के उस कोने में क्या था? न वहाँ ज़्यादा जगह थी, न बेहतर हवा और न रोशनी। वहाँ कुछ रखो तो गुसलखाने से निकलने में दिक्कत होती थी। फिर धुलाई के कपड़ों की टोकनी भी वहीं रखी रहती थी। मगर वहाँ कुछ तो था! कोई चुम्बक गढ़ा था शायद!

कुछ साल पहले हमारे बड़े-से घर में चार प्राणी थे – हमारी बेटी गौरैया, उसकी माँ, मैं और हमारी अल्सेशियन बेटी काकुल। काकुल वैसे तो हर बात मानती थी पर खाने के मामले में बेहद अड़ियल थी। अगर खाना पसन्द न हो तो वह मुँह फेर लेती थी। गौरैया उसे डाँटती और चम्मच से ज़बरदस्ती खिलाती। काकुल कभी तो खा लेती, पर कभी बिलकुल ही नहीं खाती। तब गौरैया गुस्सा होकर उस दीवार की तरफ मुँह कर के बैठने की सज़ा देती। काकुल आज्ञाकारी तो थी ही, वह उसी कोने में मुँह कर के बैठ जाती। जब तक उसे छूट नहीं मिलती।

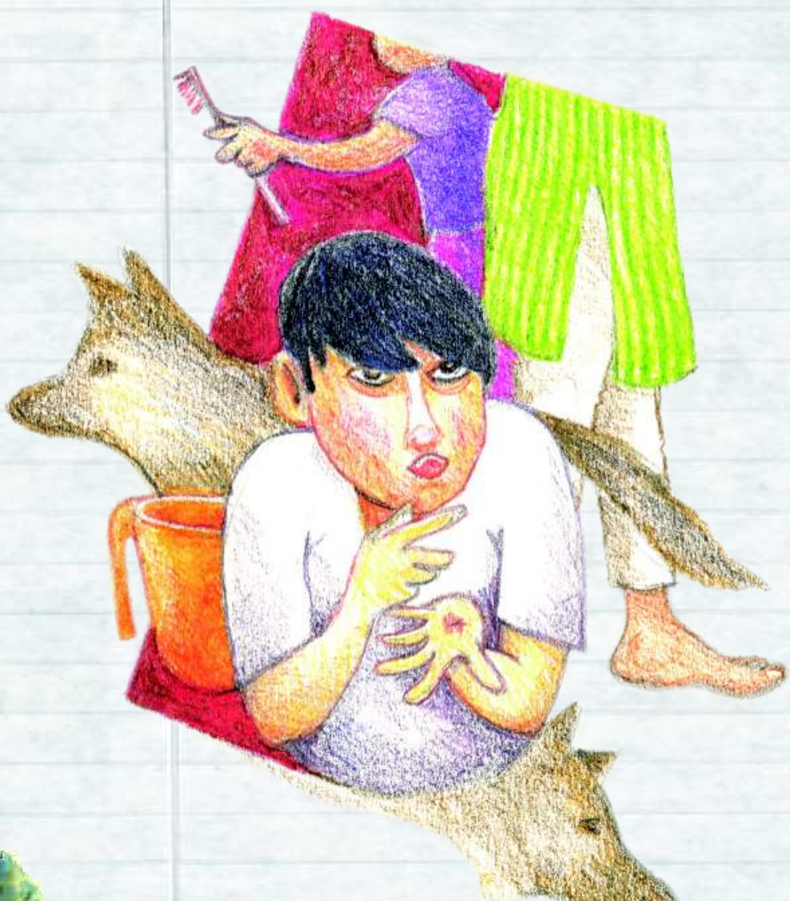

कुछ समय बाद गौरैया पढ़ाई करने दूसरे शहर चली गई। हमने कभी काकुल पर खाने की ज़बदस्ती नहीं की मगर उसे खाना नहीं होता तो कुछ कहने से पहले ही वह उसी कोने में मुँह छुपाकर बैठ जाती। उसका भारी-भरकम शरीर पूरा गलियारा रोक लेता। आने-जाने में परेशानी होती। फिर भी वह वहीं डटी रहती। पाँछ साल बाद परिवार में रैना आई। दूसरी अल्सेशियन बेटी। रैना सब खा लेती थी। फिर मनुहार की कच्ची थी। थोड़ा कहो तो बेमन से ही खाना खा लेती। लेकिन किसी दिन उसे भी खाना नहीं होता, तब वह भी उसी कोने में मुँह छुपाकर बैठने लगी। बगैर किसी के बताए।

एक दिन हमने पाया कि घर का कोई वहाँ कुल्ला कर रहा है, दूसरा कोई गुसलखाने से निकला और तीसरा यूँ ही वहाँ आ निकला। हमारे पीछे-पीछे काकुल आ गई और उसके पीछे-पीछे रैना। इतना बड़ा घर और बगीचा फिर भी परिवार के पाँचों सदस्य घर के उसी तंग कोने में एकत्रित हो गए हैं। यह बार-बार, इतनी बार होता कि हम लोग चकित रह गए। ज़रूर वहाँ कोई तिलस्म था।

अब गौरैया दूसरे शहर में है। काकुल-रैना अपने दिन पूरे कर चली गईं। गौरैया की माँ सुबह मुँह-अँधेरे योग करने निकल जाती है। मैं अकेला नीम जागा हुआ उकड़ू बैठकर मंजन करता हूँ और अचानक पाता हूँ कि मैं ऐन उसी कोने में दीवार से टिककर बैठा हूँ।

दिलीप चिंचालकर

चाँदी का पीपल

दोनों चित्रः दिलीप चिंचालकर

पीपल का एक पत्ता पता नहीं कब से मेरे मन में डोल रहा है। बचपन में भी जाने कब से। शायद बचपन में सबसे पहले मैंने पीपल के एक पौधे को अवेरा था, तब से। पौधा तो सर्र सर्र बढ़ते हुए मुझ से ऊँचा हो गया। सुघड़ और गोरा-चिट्टा पीपल। मैं उसे देखकर खुश होता रहता। पुराने घर को छोड़ते समय जब मैंने उससे लिपटकर विदा ली तब शायद उसने अपना एक पत्ता मेरे मन में रोप दिया था। वह पीपल तो अब पिपलिया सेठ बन गया है। और मेरे मन का पत्ता रुपहला।

तब से अब तक, बचपन में, किशोर उम्र में, बड़े होने के बाद जब मैं घबराने लगता हूँ, बुखार आने लगता है तब मैं आँखें मींचकर पत्ते का ध्यान करने लगता हूँ। वह तुरन्त ही लहराकर हवा करने लगता है और मन शान्त हो जाता है।

अब मेरे घर के बगीचे में ही एक पीपल उग आया है। वैसा ही दिखनौट और तन्दुरुस्त। मज़बूत तो शुरू से इतना कि मैं उसके सहारे गड्ढे में उतरे नल से बालटी भर के पानी निकाल लेता हूँ। माली बाबा कहता है कि जब पीपल में हज़ार पत्ते हो जाते हैं तो उसमें वास हो जाता है – देवताओं का वास। चौबीसों घण्टे इसके पत्ते रुक-रुककर सर्र सर्र करते गाते रहते हैं। बारिश के दिनों में तो संगीत उत्सव ही शुरू हो जाता है। मन के पत्ते की आवाज़ केवल मैं सुन पाता हूँ परन्तु इसकी आवाज़ सब सुन सकते हैं। मैं अपनी बेटी और उसकी माँ से कहता हूँ, "सुनो, तुम लोग मुझसे पूछते हो न कि मैं चुपचाप क्या सुनता हूँ? मैं ये सुनता हूँ। तुम भी सुनो और इसे मन में संजो लो।"

एक पत्ता हर किसी के मन में होना चाहिए। ज़रूरी नहीं पीपल का ही हो। आम, नीम, जामुन, गूलर... किसी का भी हो। यह मन के अन्दर का पंखा है। इसकी बयार तन-मन में जादू का गीत फूँक देती है।

दिलीप चिंचालकर

चकमक के जून 2010 (पेज नम्बर 25) के अंक में दिलीप चिंचालकर ने इसी पीपल को याद किया था – जय श्री कृष्ण पिपलिया सेठ

चींटियों की दावत

कहीं भी चले जाओ चींटियाँ दिखके रहेंगी। क्या वो हमेशा खाने की तलाश में लगी रहती हैं? याद है चकमक के अप्रैल अंक में एक गतिविधि दी थी। इस गतिविधि में चींटियों पर नज़र रखनी थी – चींटियाँ कब-कहाँ-कितनी देर के लिए किस खाने की तरफ जाती हैं? आदि। तुम्हारे कई दोस्तों ने इसे करके देखा। अपने आसपास को जानने-समझने में तुम्हारी दिलचस्पी ज़ाहिर होती है। जाने क्यों यह बात मन को खुश कर जाती है। हाँ, पर तुम्हारे भेजे कई अनुभवों से पता नहीं चलता कि खाने तक पहुँचने में चींटियों ने कितना समय लिया?, सबसे पहले किस खाने के पास पहुँचीं? पाँच मिनट बाद कहाँ गईं, एक मिनट में कितनी चींटियाँ उस खाने के पास आईं....तुम्हें क्या लगता है चींटी ने ऐसा ही क्यों किया होगा...। क्या चींटियों पर निगाह रखना इतना बोरिंग होता है?

और हाँ, कुछ बच्चों ने तो गतिविधि पर कविता ही लिख डाली...। कुछ ने चित्र भी भेजे। दो-चार चित्रों में चींटियों की दो या चार टाँगों ही बनाई गई हैं (और कुछ में उनकी उँगलियाँ भी दिख रही हैं, जो होती नहीं हैं) जबकि हम सब जानते हैं कि इनकी छह टाँगें होती हैं। बहरहाल, चींटियों की ये टाँगखिचाई भी मज़ेदार है।

यहाँ तुम्हारे कुछ चुनिन्दा अनुभव हैं। और तुम्हारे सारे अनुभवों और चित्रों को देखकर **विनता विश्वनाथन** तुमसे कुछ कहना चाहती हैं....

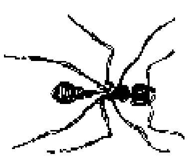

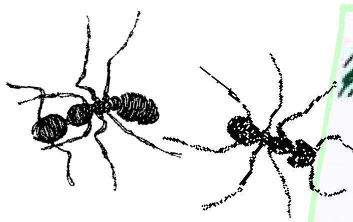

1. मैंने शरबत, चावल, बिस्कुट, अनाज, चीनी और गुड़ रखा। दो मिनट में वहाँ चींटियाँ आ गईं। वे सबसे पहले चावल खाने लगीं। पाँच मिनट बाद सबसे ज़्यादा चींटियाँ शरबत पर दिखीं। एक मिनट में 5-6 चींटियाँ उस पर आ गईं। उन्होंने पूरा शरबत खत्म कर दिया। शुरू में तीन ही चींटियाँ थीं लेकिन बाद में 10-12 चींटियाँ आ गईं। उन्हें मीठा पसन्द होता है शायद इसलिए वो शरबत पूरा पी गईं। कुछ चींटियाँ शरबत नहीं बल्कि चावल ज़्यादा खा रही थीं।

– सुखप्रीत कौर, आठवीं, जय भारत पब्लिक स्कूल, सिरसा

– अभिसार आनन्द, चौथी, डीपीएस पटना

2. सुबह कुछ मोतीचूर के लड्डू के टुकड़े पड़े हुए थे। थोड़ी देर बाद अचानक वहाँ कई चींटियाँ आ गईं। और उन टुकड़ों को उठाकर एक कतार में चलने लगीं। दोपहर बाद जब मैं बाहर गई तो मैंने देखा कि एक अण्डे का टुकड़ा नीचे गिरा पड़ा था। उसमें चींटियाँ लगी हुई थीं। मैंने उनका पीछा किया। पर थोड़ी दूर जाकर वो गायब हो गईं। रात को खाना खाकर उठी तो देखा कि एक तिलचट्टे (कॉकरोज़) के आसपास कुछ चींटियाँ चिपकी हुई थीं।

– राशिका अग्रवाल, छठी, विश्वास स्कूल

3. काली और लाल चींटियाँ सबसे ज़्यादा चीनी के ऊपर आईं। चाय पर कम आईं। अलग-अलग भोजन पर अलग-अलग रंगों की चींटियाँ आईं। लाल रंग की चींटी चीनी पर ज़्यादा आईं।

– सातवीं क्लास के बच्चे, विश्वास स्कूल, गुड़गाँव

4. एक दिन मैं गुड़ खा रहा था। खाते-खाते उसका एक टुकड़ा वहाँ गिर गया। इतने में कुछ काली चींटियाँ वहाँ आईं और गुड़ के छोटे-छोटे टुकड़ों को लेकर एक सीधी लाइन में चलने लगीं। फिर मैंने देखा कि लाल चींटियाँ एक साथ झुण्ड में गुड़ पर झपटीं और खाने लगीं। मैं दो तरह की चींटियों के अलग-अलग व्यवहार को देख अचम्भित रह गया।

– रौनक पी, छठी, डीपीएस पुणे

5. साफ कागज़ पर कॉकरोज, चिप्स, मीठे चावल और शहद रखा। पहले दो-तीन चींटियाँ आईं। बाद में वो अनगिनत हो गईं। उन्होंने पहले कॉकरोज के टुकड़े-टुकड़े किए। उसके बाद चिप्स खाए। चिप्स खत्म हुए तो मीठे चावल खाए। चावल अन्त तक थोड़े बचे रहे।

– प्रणव, तीसरी, डीपीएस लुधियाना

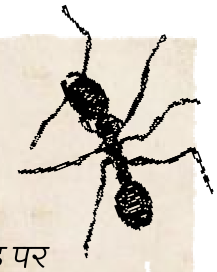

मैंने नहीं देखा कभी
किसी चींटी को चौराहे,
तिराहे या किसी अन्धे मोड़ पर
सर खुजाते खड़े हुए

हमेशा पाया है
बिना दाएँ-बाएँ देखे सिर को
सीधा रख एक सीध में
एक चाल में लगातार
कदम-ताल से चलते हुए

ना ही देखा किसी
चींटी को रोड मैप, टाइम टेबिल
बगल में दबाए
हाँफते हुए, दौड़ते हुए।

अकसर छोटे चीनी के दाने से लिपटे हुए
या किसी बड़े झुण्ड के साथ
भारी गुड़ की भेली पर भी
वो खड़ी हुई बतियाती नहीं दिखी
बल्कि उनके पैर तब भी लगे
पूरी तरह हरकत में

शायद संसार में यही एक ऐसा जीव है
जिसकी दुम पर तुरत बाँध देनी चाहिए
अपनी कविता

– तनिशा सापाट, छठी, डीपीएस पुणे

6. चींटियों का मनपसन्द भोजन क्या है जानने के लिए हमने अखबार पर शहद, मीठे चावल, आलू के चिप्स और मरा हुआ कीड़ा रखा। चींटियाँ सबसे पहले शहद के पास गईं। थोड़ी चींटियाँ शहद में डूब गईं। बची हुई मीठे चावल की ओर गईं। कुछ चींटियाँ मरे हुए कीड़े पर गईं और उसे खींचकर अपने घरों की ओर ले जाने लगीं।

शायद उनका पेट भर गया था। वे चिप्स की ओर नहीं गईं।

– सूर्यांश मित्तल, तीसरी, डीपीएस लुधियाना

7. हमने एक अखबार पर चीनी, मीठे चावल, बर्फी, शहद और रसमलाई रख दी। फिर चींटियाँ आनी शुरू हुईं। सब से पहले चींटियों ने चीनी खाई। फिर बर्फी में छेद कर दिए। फिर रसमलाई खाई। कुछ चींटियाँ शहद में चिपक गईं। और कुछ मीठे चावल लेकर घर चली गईं।

– रिहाना, तीसरी, डीपीएस लुधियाना

– अनुपम, चौथी, डीपीएस पटना

तुमने लिखा है कि चींटियों को चीनी-चॉकलेट-चाय व शहद, मसलन मीठा पसन्द है। क्या इनके पास मीठा सूँघने का कोई तरीका है? तुमको क्या लगता है – क्या ये दूर से ही मीठा कहाँ है पहचान लेती हैं, या चखकर ही उनको यह बात समझ में आती होगी? वैसे यह कहना शायद मुश्किल होगा कि उनको मीठा सबसे ज़्यादा पसन्द है – जहाँ मरा हुआ कीड़ा रखा, वहाँ भी भारी मात्रा में चींटियाँ दिखाई दीं।

कुछ बच्चों को अलग-अलग खाने की चीज़ों पर अलग-अलग किस्म की चींटियाँ दिखीं – लाल एक खाने पर, तो काली अलग खाने पर। यह एक दिलचस्प बात है। क्या ऐसा वाकई दिखा?

एक-दो चित्रों में चींटियों को पत्ते इकट्ठा करते हुए, बाम्बी में रखते हुए दिखाया गया है – क्या यही चींटियाँ मीठा पसन्द करती हैं, या फिर पत्ते खानेवाली मीठा व कीट नहीं खातीं?

इतना समझ में आया कि तुम में से कइयों को इस गतिविधि को करने में बहुत मज़ा आया – लगता है कुछ घरों में इस बहाने मिठाइयाँ भी मँगवाई गईं....

तुम्हारे चित्रों को देखकर एक सवाल मन में उठा – चींटियों को यह दावत दिखी कैसे होगी? वे खाने की सारी चीज़ों से छोटी हैं –

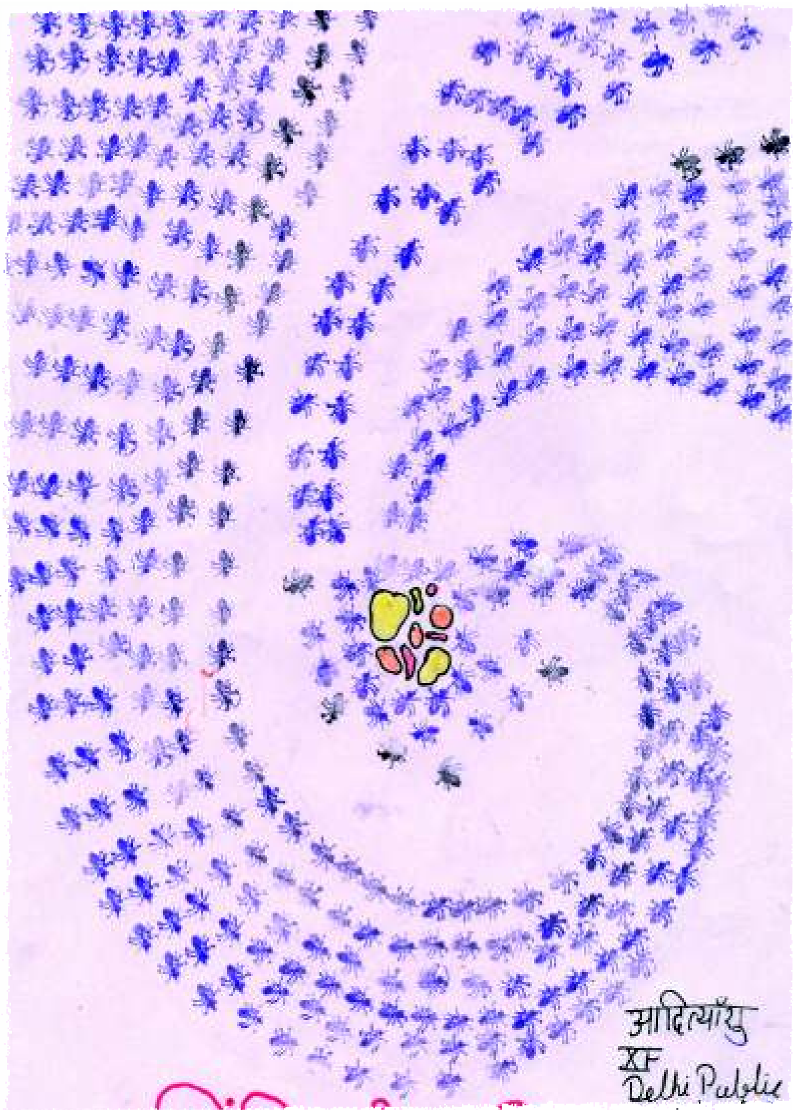

— *आदित्याँशु, दसवीं, डीपीएस पटना*

क्या सभी चीज़ें एक साथ दिखी होंगी? क्या हर चीज़ पहाड़ समान थी....?

इतना सारा मीठा/खाना वे खुद तो खाती नहीं हैं — तुम में से एक ने खाने को बाम्बी वापिस ले जाते हुए देखा। वहाँ उनका क्या करती होंगी?

कुछ चींटियाँ शहद में क्यों डूब मरीं जबकि बाकी शहद पीकर या इकट्ठा कर निकल गईं? खाना इकट्ठा करना जोखिम का काम हो सकता है चींटियों के लिए।

क्या तुमको पता है कि कुछ चींटियाँ अन्य चींटियों को अपना बन्दी बनाकर उनसे काम करवाती हैं?

सतपेड़ा

(पेज 24 का शेष भाग)

ठण्ड में ठिठुरता भी होगा। और देखो बारिश में कितना भीग रहा है। पर, वह सबको छाया देता है। आम देता है। चिड़ियों-गिलहरियों का वह घर बन जाता है। चींटों-चींटियों, मधुमक्खियों का भी। यह काम वह और पेड़ों से भी ज़्यादा अच्छी तरह कर पाता है तो इसीलिए कि उसमें सात पेड़ों का "साथ" है। हम कई बार गिनती करते कि किसके झोले में कितने आम हैं! एक होड़-सी रहती। कभी आमों को लेकर छोटे-मोटे झगड़े भी हो जाते। पर, अगले दिन हम सब फिर सतपेड़ा के पास होते। मिलजुलकर हँसते-बतियाते उसके ऊपर चढ़ जाते। कभी शोर मचाते। एक-दूसरे को चिढ़ाते। किसी चिड़िया की बोली की नकल करते। आज वे सब बातें याद आती हैं। मीठी लगती हैं। ठीक वैसी ही जैसे सतपेड़ा की मीठी गुठलियाँ। उन्हें हम तब तक चूसते रहते, जब तक उनमें थोड़े-से भी रेशे बाकी रहते। अलग-अलग आम, पर सब मीठे, जो भी हाथ में आ जाता वह मीठा ही होता।

जून की चित्र पहेली हल

कु	ल्फी		अं	क		स	ड़	क
कु		क		न	ह	र		ट
र		ल	द्दा	ख		क		ह
मु	र	गी		जू		स	वा	ल
त्ता			जु	रा	ब		यु	
	ग	म	ला		स	रि	या	
	ट्ठ		हा	र			न	ल
सू	र	ज		ब	ट	न		की
ली		ग	ट	र		ट	क्क	र

अरुण कमल

चित्रः श्वेता नाम्बियार

साँस लेते हैं तो हवा की याद आती है। चलते हैं तो धरती और मिट्टी की। ताकते हैं तो आसमान। और पानी तो हाथ में लेकर पीते हैं। लेकिन आग हमेशा याद नहीं आती। बहुत पहले जब मैं बच्चा था मेरी दादी मुझे अड़ोस-पड़ोस के घर से आग लाने भेजती। और मैं एक गोंइठे पर या कलछुल में आग के उस टुकड़े को लेकर घर आता। और उस आग के टुकड़े से पूरा चूल्हा, सूखे पत्ते, लकड़ी के टुकड़े सब सुलग उठते। चूल्हे की लाल आग इतनी सुन्दर लगती। फिर रंग बदलती लपटें। जैसी लकड़ी वैसी लपट। और धुआँ। जाड़े में सुबह सूरज उगता। धूप आती। सूरज का लाल गोला। आग का शान्त गोला। देह को अच्छा लगता। रात में हम लकड़ी जलाते तापने को। और लकड़ी के मुन्दों से इतनी तरह की लपटें उठतीं। अनेक रंगों की। कभी तो बिलकुल पास तक। कहा जाता, "आग से मत खेलो। आग को छूना मना है।" लेकिन दमकती हुई आग हमें मोह लेती। एक बार इस्पात कारखाने में धमन भट्टी देखी। इतनी लाल, इतनी आग। घर में लकड़ियाँ जलतीं। आग बनतीं। फिर मुलायम राख। आग, धुआँ राख – सब एक में। लेकिन अब तो आग की लपटें रसोई में कम दिखती हैं। गैस की नीली लपक। पर वही तो आग है। मोमबत्ती की लौ। इतनी साफ, कटी-छँटी। लौ का मन हवा के बिना नहीं लगता। हलकी हवा हो तो लौ मज़े से नाचती है। ढिबरी की पतली सी कली-सी लौ। लालटेन के भीतर आराम से सुलगती लौ। और बैशाख, जेठ की दोपहर की धूप। आग बरसती है। कहीं भी आग नज़र नहीं आती। पर बहुत गर्मी लगती है। यानी हवा में आग है। जैसे गरम पानी में आग है। सोचता हूँ – क्या गरम पानी से आग बुझाई जा सकती है? दादी ने कहा था – आग पर पेशाब करना मना है। आग पवित्र है। आग सब को शुद्ध कर देती है। आग सब कुछ खा जाती है। हर चीज़ जलकर खत्म हो जाती है। आग की पूजा होती है। आग यानी ताप। आग यानी प्रकाश।

अँधेरे में अच्छा नहीं लगता। शुरू में रात का मतलब अँधेरा था। चाँद था। तारे थे। तब आग नहीं थी। तब आदमी ने पत्थर के टुकड़े रगड़े और आग बनाई। तब से आदमी की नई ज़िन्दगी शुरू हुई। कहानी है कि प्रमश्युस ने देवताओं के घर से आग चुराई थी। इसी आग ने मनुष्य को नई तकनीक दी। भोजन पकाना। मिट्टी पकाना। सब कुछ इसी से हुआ। आज हम दियासलाई लेकर चलते हैं। मोबाइल फोन लेकर चलते हैं। टॉर्च लेकर चलते हैं। सब में आग है। आदमी के शरीर के भीतर भी आग है। धरती के भीतर भी आग है। जंगल की लकड़ियों में। समुद्र के पानी में। चकमक पत्थर में।

आग

जो आग जाड़े में प्यारी लगती है वही गर्मी में सताती है। गर्मी में आग बहुत लगती है। और सब कुछ जल जाता है। राख बन जाता है। आग बहुत भूखी लगती है। सब कुछ खा जाती है। लेकिन मैं नहीं जानता वह आती कैसे है? कहाँ छिपी रहती है? शायद रगड़ से। घर्षण से।

मेरे घर पर अँगारों में लिट्टी सिंकती है। दादी बोरसी में मेरे लिए लिट्टी पकाती थीं। आलू भी भीतर दबाकर। आलू का छिलका पट-पट बजता। मैंने एक बार एक आदमी को अँगारों पर चलते देखा था। बिछे हुए लाल कौंधते अँगारे बहुत सुन्दर लगते। जैसे आसमान की चमकती बिजली। वह भी तो आग की लिखावट है। एक बार मैंने कागज़ का टुकड़ा जलाया। लपट पसरती गई। टुकड़ा मुड़ता गया। अन्त में एक लाल लकीर बची – आग की लकीर। फिर बुझ गई।

यह अग्नि ही तो है तो हमें शीत से बचाती है। जो हमें अँधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। मेरी बोरसी में अभी भी छोटा-सा एक लाल अँगारा है।

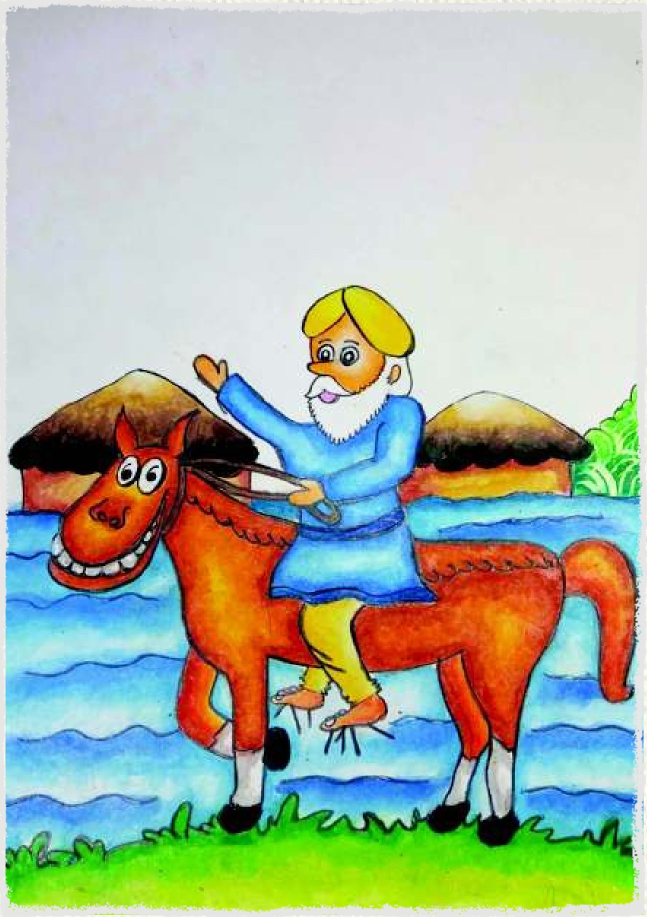

- अदिति साही, नवीं, डी.सी. मॉडल स्कूल पंचकुला, हरियाणा

- आयुष गोहधिया, आठवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

बोलीरंगोली

सितम्बर की कविता सुनो -

ऐसा कोई शख्स नज़र आ जाए जब
कान पे जिसका हाथ न हो
दाएँ बाएँ टहल-टहल के
खुद ही हँसता बोलता न हो
बिन मोबाइल खाली हाथ नज़र आ जाए कोई तो
खामख्वाह ही हाथ मिलाने को जी करता है

कवि गुलज़ार की इस पंक्ति पर
तुम्हारे लगभग सात सौ चित्र मिले।
गुलज़ार साब के पसन्दीदा
चार चित्र यहाँ पेश हैं।
इन्हें भेजनेवाले चित्रकारों को
उपहार में चकमक डायरी
अथवा किताबें भेजी जा रही हैं।

- ओम शर्मा, पाँचवीं,
डी.पी.एस. वाराणसी

– सितारा बी, बारहवीं, राजकीय इन्टर कॉलेज, बंडिया, उधमसिंहनगर

– आदर्श नयन, दसवीं, डी.पी.एस. पटना

– रुद्राक्ष भायरे, आठवीं,
आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

– पूनम, आठवीं, बिहार बालभवन किलकारी, पटना

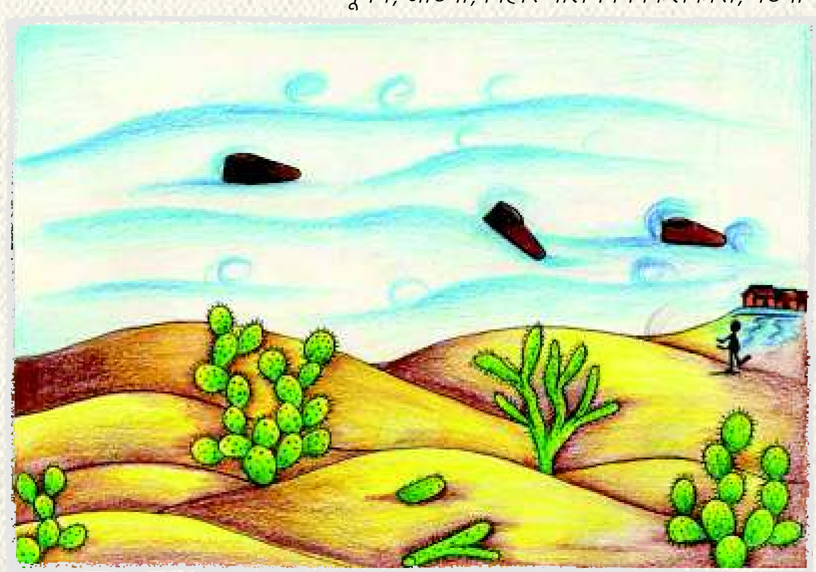

काँटा चुभा था क्या पाँव में
पानी भरा था क्या गाँव में
दूर से आया इब्ने बतूता
पाँव में क्यों न पहना जूता

- पायल प्रियदर्शनी, नवीं, बिहार बालभवन किलकारी, पटना

काँटा चुभा था क्या पाँव में
पानी भरा था क्या गाँव में
दूर से आया इब्ने बतूता
पाँव में क्यों न पहना जूता

- रूपा, मयूर समूह, दिगन्तर, जयपुर

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 30 जुलाई तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

- नेहा चौहान, छठी, प्रोत्साहन, पुणे

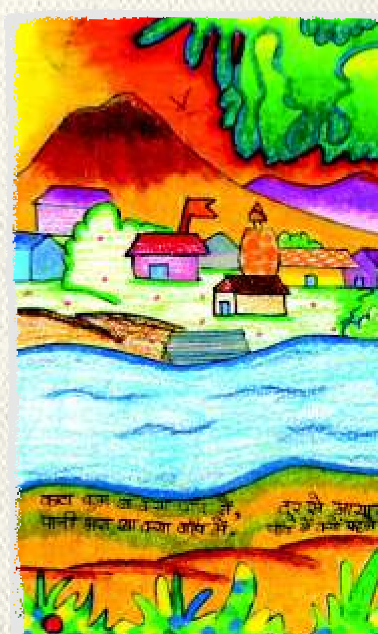

बोलीरंगोली

पता है -
चकमक, एकलव्य,
ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल -16
(फोन - 09425010115) चाहो तो ईमेल कर दो
chakmak@eklavya.in

- सफदर, पाँचवीं, हाजी पब्लिक स्कूल, बर्सेवाना, जम्मू कश्मीर

- यावी बी.अग्रवाल, छठी, डी.पी.एस. सूरत

- मेघना सिंह, छठी, डी.पी.एस. पुणे

- निशि छाजेड़, छठी, डी.पी.एस. पुणे

बुलबुले

अशोक भौमिक

एक बच्चे की दुनिया

चित्रकला के इतिहास का एक प्रसिद्ध चित्र है जॉन एवरेट मिलाइस का "एक बच्चे की दुनिया"! जॉन एवरेट मिलाइस (1829-1896) ने 1886 में अपने पाँच साल के नवासे विलियम मिलबोर्न जेम्स का एक चित्र बनाया। इसमें गहरे रंग के बैकग्राउण्ड में एक बच्चा और उभरकर सामने आते दो बुलबुले दिखते हैं। चित्र में रोशनी और उसका फैलाव ध्यान खींचता है। चित्र में रोशनी का स्रोत तो नज़र नहीं आता पर बच्चे के चेहरे का दाहिना हिस्सा सबसे ज़्यादा रोशन है। इसके बाद बच्चे के कोट की सफेद कॉलर पर और फिर उसके हाथों पर प्रकाश की हलकी छटा दिखती है। बच्चे के हाथों में साबुन पानी का कटोरा और फुकनी है। रोशनी कम होते-होते बच्चे के जूते और कमरे के फर्श तक पहुँच रही है। रोशनी के बाएँ ऊपरी कोने से फर्श तक पहुँचने को चित्र में साफ देखा जा सकता है। रोशनी का एक सतह से दूसरी सतह तक पहुँचते हुए कम होते जाना इस चित्र का एक महत्वपूर्ण गुण है।

चित्रकार ने इसमें दो और चीज़ों को जोड़ा है। बच्चे के एक ओर एक टूटा हुआ गमला है तो दूसरी ओर एक पौधेवाला गमला। शायद यह बच्चे के शरारती और नटखट होने की ओर एक इशारा है, जिसने खेल-खेल में गमले को तोड़ दिया है!

जॉन एवरेट मिलाइस के "एक बच्चे की दुनिया" की प्रसिद्धि एक दूसरे कारण से भी है। 1807 में इंग्लैंड के एक साबुन निर्माता ने नहाने का एक लगभग पारदर्शी और सुगन्धित साबुन बनाया था। 1886 के आसपास थॉमस बैरेट इस साबुन बनानेवाली कम्पनी के मालिक बने। थॉमस बैरेट एक कुशल कारोबारी थे। वे विज्ञापन के महत्व को भी बखूबी समझते थे। 1886 में लंदन की एक गैलेरी में जब पहली बार "एक बच्चे की दुनिया" प्रदर्शित हुई, तब जॉन एवरेट मिलाइस प्रसिद्धि के शिखर पर थे। एक कला प्रेमी ने इसे तुरन्त खरीद लिया। कुछ समय बाद यह चित्र "लंदन न्यूज़" नाम की एक पत्रिका में छपा।

बड़े होने पर विलियम इंग्लैण्ड की शाही नौसेना में एडमिरल बने। लेकिन ताउम्र वे बुलबुले के नाम से ही जाने जाते रहे।

थॉमस बैरेट को इस चित्र ने तो प्रभावित किया ही, साथ ही उन्हें विज्ञापन के लिए भी इसमें अपार सम्भावनाएँ दिखीं। और उन्होंने अपने नहाने के पारदर्शी साबुन के विज्ञापन के रूप में इसका इस्तेमाल कर लिया। उस वक्त तक किसी स्वतंत्र चित्र का उपयोग किसी व्यवसायिक उत्पाद के विज्ञापन के लिए होना नई बात थी। साबुन के विज्ञापन में इस चित्र का शीर्षक "द बबल्स" (बुलबुले) रखा गया।

विज्ञापन में इस चित्र को देखने से लगता है जैसे ये बुलबुले उसी साबुन के हैं। पारदर्शी बुलबुले साबुन के पारदर्शी होने की ओर इशारा हैं। और बच्चे की कोमलता और पवित्रता को थॉमस बैरेट ने साबुन के कोमल और शुद्ध होने से जोड़ दिया है। साबुन के इस विज्ञापन ने न केवल उस समय की विज्ञापन विधा को एक नई ऊँचाई दी, बल्कि आज भी इसे विज्ञापनों की दुनिया में एक मील का पत्थर माना जाता है।

विज्ञापन में इस चित्र के इस्तेमाल ने एक बड़े विवाद को भी जन्म दिया। और चित्रकार मिलाइस को कटु आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। आज भी चित्रों का व्यावसायिक प्रयोग बहस का एक मुद्दा बना हुआ है। पर इसमें कोई शक नहीं कि विज्ञापन के रूप में प्रसिद्धि मिलने के बावजूद यह चित्र अपने आप में भी एक नायाब रचना है।

झील इसलिए सूख गई *(पेज 16 का शेष भाग)*

मैंने पन्ने पलटे। उसके पिता का था। उसमें हर शिकार का साल, तारीख, शिकार करनेवालों के नाम थे। चिड़ियों की संख्या और इस्तेमाल की गई बन्दूकों का ब्यौरा भी था। "मैं इसकी फोटो खींच लूँ?" मैंने पूछा

"शौक से।"

मैंने रजिस्टर के पन्नों की फोटो ले ली।

रात घिरने लगी थी। सर्दी के साथ कुहासा बढ़ रहा था। मैं उठ गया। राजू भी। वह दरवाज़े तक आया।

"जहाँ मासूम बेगुनाहों का खून गिरता है, वहाँ सब सूख जाता है... जैसे यह झील। आज भी यह खून गिर रहा है। एक दिन यह धरती भी सूख जाएगी।"

उसकी उदासी, दुख और निराशा से मैं घबरा गया। मेरा दम घुटने लगा। तेज़ी-से सड़क पर निकल आया। किले की ढाल पर चलता हुआ मैं सोच रहा था, जीवन की कितनी गहरी और सार्थक समझ इस आदमी को है। और यह भी कि क्या किसी दिन उसकी बात सच हो जाएगी?

प्यारे भाई रामसहाय *(पेज 11 का शेष भाग)*

घर के रास्ते में जगह-जगह लोग मैच की कमेंट्री सुन रहे थे। उससे मुझे मालूम हुआ कि पाकिस्तान ने पारी समाप्ति की घोषणा कर दी और हमारी टीम को बैटिंग की दावत दे दी। हमारी टीम की तरफ से मनोहर शर्मा पारी की शुरुआत करने पहुँचे और पहली ही गेंद पर आउट हो गए।

मुझे एक बहुत गन्दी-सी खुशी हुई कि अच्छा हुआ जो मैं उठकर चला आया। मैं मनोहर शर्मा और विनय माथुर का खेल देखने गया था। विनय माथुर तो पहले ही निराश कर चुका था। अब मनोहर को शून्य पर आउट होकर पवेलियन में लौटते देखकर क्या मुझे अच्छा लगता! बहुत बाद में – यानी बड़े होकर ही समझ में आया कि खेल के बारे में इस तरह सोचना ठीक नहीं है। शून्य पर आउट होने के लिए कोई नहीं खेलता। न कोई गेंदबाज़ पिटने के लिए गेंद फेंकता है। लेकिन, रामसहाय, तुम ही बताओ! सामने वाली टीम क्या घास खाती है?

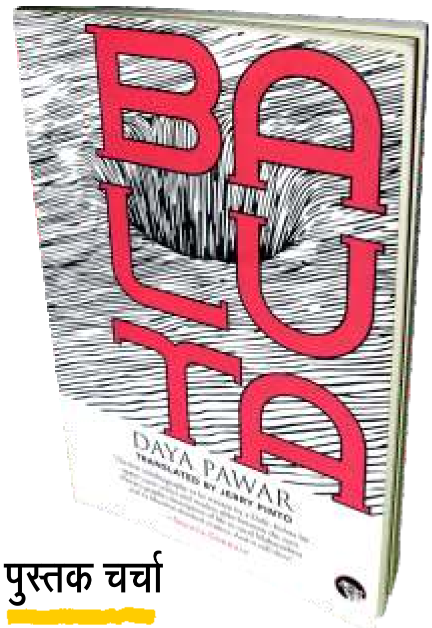

पुस्तक चर्चा

बलूत दलित मराठी कवि दया पवार की आत्मकथा है। इसमें दया पवार जिस बेबाकी से उस समय के समाज में फैली जाति व्यवस्था की क्रूरता बयान करते हैं वह चौंकानेवाली है। उतना ही खरा-खरा वो अपने, अपने परिवार, समाज और दलित आन्दोलनों के बारे में भी लिखते हैं। बलूत में दया 1940 से 1950 के बीच की मुम्बई और गाँव में महारों के अलग-थलग किए महारवाड़ा की ज़िल्लत भरी ज़िन्दगी उघाड़कर रख देते हैं।

बलूत मराठी में सबसे पहले ग्रँथाली ने 1978 में छापा था। अब चालीस साल बाद इसका अँग्रेज़ी अनुवाद छपा है।

कभी मौका मिले तो इस किताब को ज़रूर पढ़ना। इसे स्पीकिंग टाइगर नामक प्रकाशक ने छापा है...

बलूत के कुछ अंश यहाँ पेश हैं –

दया पवार

अनुवाद - जैरी पिंटो

बलूत

1

हाँ, तो मैं बात कर रहा था अपने पिता की नौकरी की। वो बन्दरगाह में काम करते थे। वहाँ करते क्या थे यह किसी को पता नहीं था। मैं दोपहर को उन्हें खाना देने जाता। बाहर से पता नहीं चलता था कि बन्दरगाह कितना बड़ा है। वहाँ से बस दूर-दूर तक फैला बेचैन समन्दर दिखता। और ऊँची इमारतों जैसे जहाज़ उस पर डोल रहे होते।

एक दिन खैर मैंने देख ही लिया। पिता एक बड़ी-सी भट्टी के पास बैठे थे। वो शायद बन्दरगाह के कूड़े-कचरे को भट्टी में जलाया करते थे। अब सोचता हूँ तो लगता है शायद वो बन्दगाह ही उनकी तमाम इच्छाओं, काबीलियतों, दिलचस्पियों को निगल गया था। वो बहुत सुन्दर शहनाई बजाते थे। ढोलकी बजाते थे। ढोलक के बीच की चमड़ी को काला करने के लिए उन्हें खासतौर पर बुलाया जाता था। इस पर थाप पड़ने से गहरी आवाज़ आती है। बीज बोने में तो वो क्या खूब माहिर थे! इतना काबिल आदमी... यहाँ इस भट्टी के आगे बैठकर कबाड़ जला रहा है! क्या इसीलिए वो घर आने की बजाय काम से सीधे शराबखाने चले जाते थे? हर रोज़...

2

जो समय बीत गया है उसे भूलने की मैंने पूरी कोशिश की। पर बीता समय बहुत ज़िद्दी होता है। उसने इस आसानी से मेरा पीछा नहीं छोड़ा। जो मैं यहाँ सोच रहा हूँ, लिख रहा हूँ...कई दलित उसे कचरे के ढेर से बीनना कहेंगे। एक मैला ढोनेवाले का ज़िन्दगीनामा। पर वो जो अपने बीते समय को भूल गया वो अपना भविष्य क्या सँवारेगा!

मेरे बचपन का महारवाड़ा पिछले तीस-चालीस सालों में खत्म हो गया है। पर मेरे मन में पड़ी उस समय की इतना ज़िन्दा छाप को मैं कैसे पौंछ दूँ? वो आज भी मुझे सिहरा जाती हैं।

भीख माँगना महारों की फितरत में नहीं है। मालिक की ज़मीन पर काम करने के बदले में मिलनेवाला उनका हिस्सा बलूत कहलाता है। वे इसे खैरात नहीं मानते हैं। अपना हक मानते हैं।...

महारों के काम का कोई बँधा समय नहीं होता था। वो बन्धुआ मज़दूर जैसे थे। चौबीस घण्टे में कभी भी किसी भी काम के लिए इन्हें बुलाया जा सकता था। इसे बेगार कहा जाता। ज़्यादातर कामों के लिए न पढ़ाई-लिखाई चाहिए होती थी और न ही कोई खास हुनर। कुछ काम तो एकदम फिजूल के होते। और कुछ हमारी गरदन से लटके रहते। हम गाँव का टैक्स शहर ले जाते। कोई खास आदमी गाँव आता तो उसके घोड़ों के आगे-आगे दौड़ते। उसके जानवरों की देखरेख करते। उन्हें सानी-पानी देते। दवा-दारू करते। गाँव में कहीं कोई शवयात्रा निकलनी होती तो उसकी मुनादी करते। मरे पशुओं को उठाकर ले जाते। जलाने के लिए लकड़ी लाते। हर त्योहार में दिन-रात संगीत बजाते। नई बहू के स्वागत में गाँव की सरहद पर गाना-बजाना करते। और इन सब के बदले हमें मिलता क्या?

बलूत – फसल में हमारा छोटा-सा हिस्सा।

मैं जब छोटा था तो बलूत लेने अपनी माँ के साथ जाता था। हर परिवार का अपना बँधुआ माहर होता था। बाँटी जानेवाली फसल का ढेर लगा होता। सभी लोग अपने घरों से एक-एक कम्बल लेकर वहाँ पहुँच जाते। इनमें वो विधवाएँ भी होतीं जिनके बाल काट दिए गए होते थे। अनाज देते समय किसान अकसर भुनभुनाते रहते – तुम साले नीच जात के लोग, निकम्मे हो तुम लोग। काम-धाम कुछ करना नहीं और जब लेने की बारी आई तो बेशर्मों की तरह आ गए। और सबसे आगे खड़े हो गए। तुम्हारे बाप का माल है ये? पर उस समय के महार भी कोई कम नहीं थे। ये चमकीले-काले बदनवाले, ऊँचे-पूरे होते थे। मराठाओं की ईंट का जवाब पत्थर से देते। मराठा हमें ढेर के ऊपर का अनाज देकर चलता करने की फिराक में रहते। पर वहाँ दाने बहुत पतले और छोटे होते थे। हमें नीचे का अनाज चाहिए होता था। मोटे दानेवाला। पर मराठाओं की गाली-गलौज पर ज़रा कान न धरते थे। वो ढेर के ऊपर अपने कम्बल डाल देते। और वहीं बैठ जाते। मराठाओं को आखिर नीचेवाला अनाज देना ही पड़ता। वो महारों को कोसते रहते। पर महार उन्हें सुना-अनसुना कर अपने कम्बल बाँधते रहते।

चित्र : मयूख घोष

3

कभी-कभी मरा हुआ कोई बड़ा-सा जानवर महार के घर आ जाता। अब उसे एक बार में तो खाया नहीं जा सकता था ना। तो वो उसे लम्बा-लम्बा कतरकर आग के ऊपर रख धुआँ दिला देते। इसे चान्या कहते। चान्या को बाद में छोटा-छोटा काटकर टोड्क्या बनाते। श्रावण और आषाढ़ के मुश्किल महीनों में ये बहुत काम आते।...

चान्या, टोड्क्या जैसे शब्द मराठाओं के लिए भले ही नए थे पर कुछ मराठाओं को इनका चस्का लग गया था। एक दिन मैं करारे भुने हुए चान्या लेकर स्कूल गया। आधी छुट्टी में मैं सोच ही रहा था कि चुपके से खिसक जाऊँ और चान्या की दावत उड़ाऊँ। सब कुछ प्लान के मुताबिक हुआ। अचानक एक ब्राह्मण दोस्त आ धमका और बोला, "क्या खा रहे हो...अकेले-अकेले।" मैं झेंप गया। "कुछ नहीं बस यूँ ही...कुछ चुरमुरा चबा रहा था।" "अच्छा, कैसा स्वाद है इनका?" वो बोला। "मुझे भी तो चखाओ ज़रा।" मुझे सूझा नहीं कि करूँ क्या। मैं एक ब्राह्मण को अपवित्र करने जा रहा था। गाँववालों को पता चल गया तो? पर वो अड़ा रहा, "अरे, दे तो यार।" मैं क्या करता? मैंने उसे वो चुरमुरा दे दिया। उसे वो बहुत ही स्वादिष्ट लगा। उसने यह बात सारे दोस्तों तक पहुँचा दी। मिनटों में कई दोस्त आ गए। वे सभी ऊँची जात के थे। और सभी को वही चुरमुरा चाहिए था।...

चुरमुरा ही नहीं उन्हें मेरे घर का खाना भी बहुत अच्छा लगता था। तालुका में मैं हॉस्टल में रहता था। कई बार माँ दोपहर में चारा बेचने हमारे स्कूल के पास आती थी। तो मेरे लिए भाकरी ले आती। उसके ऊपर पिसकर पकाया हुआ माँस होता। एक दिन मेरे कुछ दोस्तों को पता चल गया और वे मेरा पूरा खाना चट कर गए। फिर अकसर ऐसा होने लगा। वे मेरा खाना खा जाते और मुझे अपनी पोली (रोटी)-भाजी दे देते।

तालुका और गाँव में यही अन्तर था। तालुका में ऊँची जात के लोग सबसे बराबरी का व्यवहार करते थे। मेरा उनके घर आना-जाना, उठना-बैठना था। रसोई को छोड़कर।....कई साल बाद मुझे पता चला कि मेरे दोस्त जानते थे कि वो क्या खा रहे हैं।

चित्रः तापोशी घोषाल

4

एक मरी हुई गाय को उठाना बहुत मुश्किल काम होता है। वो इतनी वज़नी हो जाती है कि दो आदमियों के लिए भी उसे उठा पाना मुश्किल होता है। उसके चारों पैरों को बाँधकर बीच में से एक बाँस घुसा दिया जाता। बाँस के दोनों सिरों को कन्धों पर टिकाकर गाँव से बाहर ले जाया जाता था। जैसे कोई पालकी जा रही हो। गाय की उन करुणाभरी आँखों का यूँ आसमान की तरफ पलट जाना, मुझमें सिरहन पैदा कर देता। वो आँखें आज भी मुझे दहला देती हैं। मेरी माँ की आँखें मुझे एकदम उस गाय की आँखों जैसी लगतीं। जब मरे जानवर को गाँव से बाहर ले जाने का ज़िम्मा मेरे परिवार का होता तो माँ ही उसे उठा कर जाती। बोझ से उनकी साँसें उखड़ जातीं। साँस लेने की उनकी जद्दोजहद देखना मेरे लिए असहनीय हो जाता। मैं तड़प जाता। और सोचता कि काश मैं थोड़ा बड़ा होता तो उनका बोझ कुछ हलका कर पाता।

चित्र पहेली

▶ दाएँ से बाएँ ▼ ऊपर से नीचे

मेरा पन्ना

मछली की कहानी

एक दिन की बात है। दो मछलियाँ थीं। उन दोनों में गहरी दोस्ती थी। वो दोनों आपस में कुछ बात करना चाहती थीं। एक मछली ने कहा, "कहीं घूमने जाते हैं।" दूसरी बोली, "ठीक है।" दोनों मछली जाने लगीं। जाते-जाते दोनों मछली थक गईं। दोनों आराम करने लगीं। वहाँ एक बड़ी-सी व्हेल मछली आ गई। और वहाँ दोनों में बहुत हलचल हो गई। एक मछली डरके दाईं ओर भागी और एक बाईं ओर भागी। दोनों दोस्त आपस में बिछड़ गए और जो मछली दाईं ओर भागी थी उस मछली को मछुआरे ने पकड़ लिया। दूसरी मछली उसे खोजते-खोजते थक गई और मर गई।

–मोहित कुमार, आठवीं,
उ.मा. विद्यालय केनुहट,
ग्राम केवली, प्रथम बिहार

पक्षियों का दर्द

हवाओं के संग पंख फैलाकर
उड़ चली जाती हूँ
एक आशियाने की तलाश में
दूर देश में, हर गली हर चौराहे पर
ढूँढती हैं आँखें एक वो जगह
जहाँ तिनके-तिनके जोड़कर
मैंने बनाया था अपना घोंसला
पर मुझे नहीं मिलता
वो फूलों से सजा आँगन
जिसके खप्परों में मैं
बसाती थी अपना घर
अण्डों से निकलते मेरे बच्चे
जिनके लिए बुनती थी सपने
पर अब सब टूट चुके हैं
पानी की कुछ बूँदों के लिए
मेरी निगाहें भटक रही हैं
और मैं तरस रही हूँ
अपनी ज़िन्दगी के लिए

–घुँघरू, बाल भवन किलकारी
पटना, बिहार

– कुमकुम शाक्या, चौथी,
आरुषि संस्था भोपाल, म. प्र.

बाढ़

अगर जो टूटा बाँध
बह निकलेगा पानी
तमाम हदें लाँघता
पानी ही पानी हर ओर
फ़िज़ां में अफरा-तफरी का शोर
पानी बह निकलेगा
शहरों को लीलता
दहाड़ता, चीखता
गाँवों को अपनी आगोश में लेता
अगर जो टूटा बाँध।

मूल अँग्रेज़ी कविता – अनोरा, पूर्णा लर्निंग सेंटर बंगलोर, कर्नाटक

पानी बरसा रात में

आसमान में घूमे बादल
मस्ती से बरसात में
बिजली कड़की पत्ते चमके
पानी बरसा रात में.....

घूम रहे हैं छाते लेकर
मेंढक अपने हाथ में
छुपे हुए हैं लेकिन पक्षी
बच्चे लेकर साथ में
बाँट रही है सौंधी खुशबू
हवा हमें सौगात में
पानी बरसा रात में.....

बूँदें नाच रही हैं झम-झम
जैसे भरे परात में
बादल गरज़ रहे हैं जैसे
ढोलक बजे बरात में
कीड़ा खाने को बैठी है
एक छिपकली घात में
पानी बरसा रात में....

प्रस्तुति – सलोनी राजपूत, नवीं, शाहजहाँपुर, उ. प्र.

(सलोनी, शुक्रिया, क्या तुम इसके कवि का नाम जानती हो? - सं.

–कामेक्षा ताकसान्ड़े, तीसरी, आनन्द निकेतन सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र

चूहे के बच्चे की अम्मा

एक बार मैं अपने घर पर खेल रहा था। मेरी माँ आँगन में झाड़ू लगा रही थीं। मेरी माँ ने मुझे बुलाया और कहा कि ये एक चूहे का बच्चा झाड़ू लगाते-लगाते यहाँ आ लुढ़का है। इसे कहीं किनारे रख दे। मैंने उस बच्चे को उठाया और उसे पालने की सोची मगर मेरे घर में एक चूहे का बिल था। मैंने सोचा यह बच्चा इसी बिल में रहनेवाली चुहिया का होगा। और मैंने उसके बच्चे को एक डिब्बे में डाल दिया। और वह ज़ोर-ज़ोर से चीं-चीं करने लगा। मैंने सोचा कि वह भूखा होगा। मैंने उसे रोटी के टुकड़े लाकर दिए। मगर उसने नहीं खाया। फिर बाद में उस बच्चे को मैंने उस चुहिया के बिल के पास रख दिया। वह उसे अपने बिल के अन्दर ले गई। और बाद में मुझे समझ आया कि जैसे हमारी माँ होती हैं वैसे ही इनकी भी माँ होती हैं।

– समीर सिंह राना, सातवीं, राजकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय खेतलसण्डा मुस्ताजर उधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड

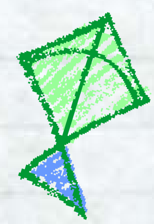

बूँद

उदयन वाजपेयी

कहने को वह बूँद है। पर उसके भीतर झाँको तो सही – पूरा समुद्र नज़र आएगा, पूरा सूर्य, आकाश, तारे और हाँ, बूँद के भीतर झाँकता तुम्हारा चेहरा भी तुम्हें बूँद में ही दिख जाएगा।

कहने को बूँद ज़रा-सा पानी है – बूँद भर पानी – पर उसके भीतर न जाने कितनी नदियों की यादें हैं, तालाबों, न जाने कितने समुद्रों की और आँसुओं की यादें हैं। काश, हम बूँद को सतह-दर-सतह खोल सकते। जैसे, किताब को पन्ना-दर-पन्ना खोलते हैं। वहाँ हमें न जाने कितनी सारी चीज़ें दिखाई दे जातीं। न जाने कितनी बार हर बूँद भाप में बिखरती है। न जाने कितनी बार वह नए भाप के रेशों से दोबारा बूँद बन जाती है। हमसे मिलने से पहले कौन जाने कितनी यात्राएँ हर बूँद कर चुकी होती है। कौन जाने? उसकी किसी एक यात्रा पर हम भी चलते हैं।

चलो, बूँद के बूँद होते रहने की यात्रा पर चलते हैं। कहाँ से शुरू करें?

आँसू से?

होशंगाबाद स्टेशन पर एक छोटी-सी बच्ची अपनी माँ से बिछुड़ गई। कुछ देर के लिए। उसके बालों में लाल फीते बँधे थे। वह रोने लगी। हवा में लाल फीते फरफराने लगे। वह रोती गई, फीते फरफराते रहे। उसके आँसूओं की बूँदें उसके गालों पर ही सूख गईं। पर कुछ एक प्लेटफॉर्म के गर्म फर्श पर भी गिर पड़ीं।

एक बूँद जल्द ही भाप बनकर ऊपर उड़ चली। भाप के रेशों में उड़ती-उड़ती वह साफ-सफेद बादलों तक पहुँच गई। और यही नहीं वह उनमें शामिल हो गई। उसने अभी थोड़ा-सा सुस्ताया ही था कि हवा उसे बादल समेत उड़ाकर सतपुड़ा के वनों की ओर ले चली। वह भाप बनी बूँद बर्षा की धारा के साथ नर्मदा नदी में जा गिरी। नर्मदा उसे बहाते हुए अरब सागर में छोड़ आई। रास्ते में वह कई पानी के पौधों पर सुस्ताती रही पर रह-रह कर वह बूँद समुद्र में इधर-उधर भटकती रही। एक सुबह जब वह आकाश को देखने समुद्र की सतह पर आई, सूर्य की किरणों ने खींचकर दोबारा उसे बादल पर बैठा लिया। बादल पर बैठी हुई वह दूर देश हाण्डूरास नाम के देश पहुँच गई। और वहाँ के एक शहर की सँकरी-सी गली में बरस गई।

जब वह नीचे आई एक छोटा-सा बच्चा मुँह खोलकर बारिश में भीगने घर से बाहर निकला और हमारी बूँद उसकी जीभ पर बारिश का स्वाद बनकर गिर पड़ी। कई दिनों तक वह उसके शरीर में घूमती रही, कभी दिल में जाती, कभी जिगर, कभी हाथों में ठहरती कभी आँखों पर। लेकिन एक दिन तेज़ धूप में वह उस बच्चे की चमड़ी से पसीना बनकर बाहर आ गई और बहती हवा में दूर चली गई। उसके भीतर का नमक झर गया और वह चुपचाप एक पत्ती की नोंक पर ओस बनकर बैठ गई। मेरे दोस्त ने सुबह ही उसे वहाँ बैठा देखा था।

ध्यान से देखो।

हर बूँद में ऐसा ही सफर नज़र आएगा।

चित्रः सुजाशा दासगुप्ता

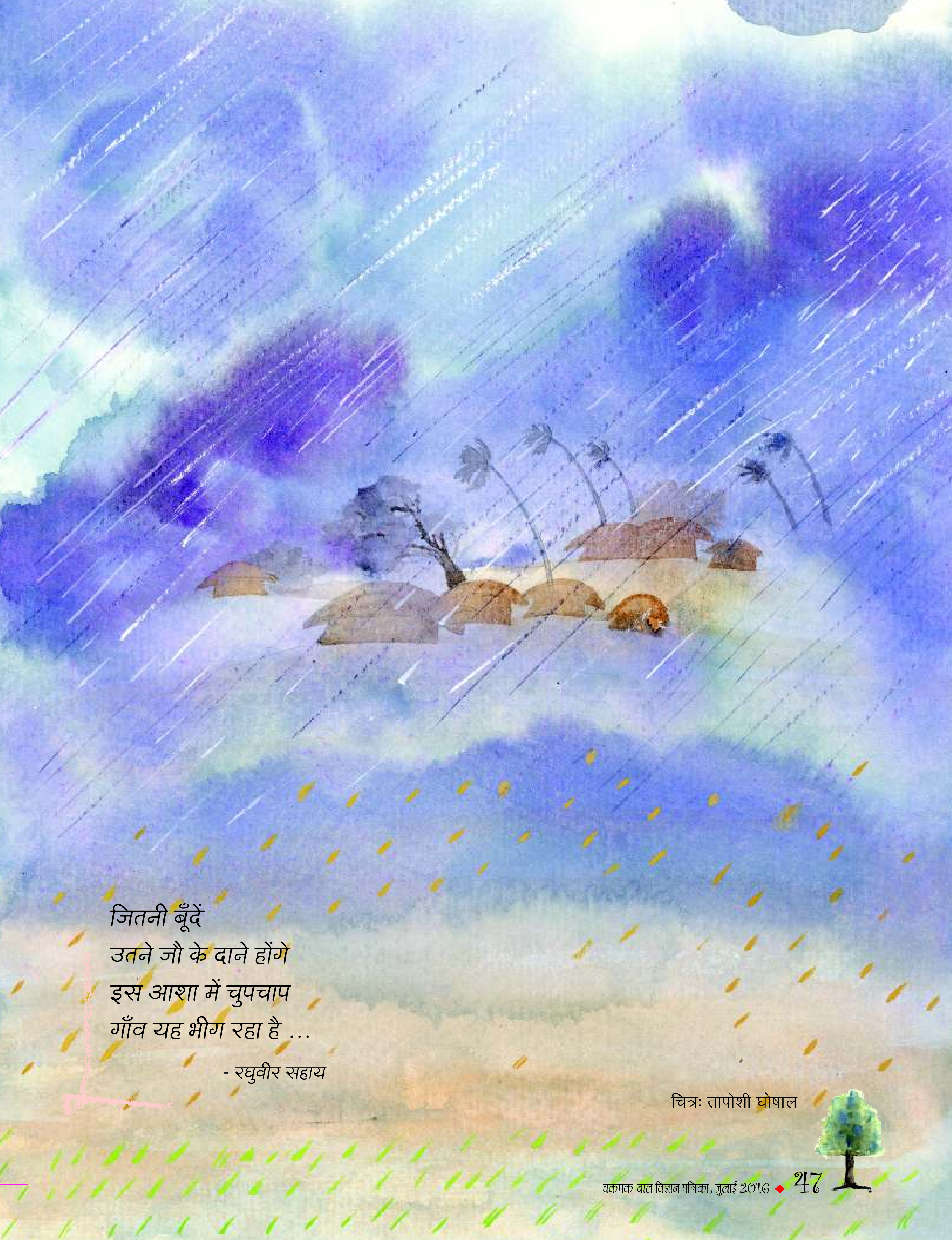

जितनी बूँदें
उतने जौ के दाने होंगे
इस आशा में चुपचाप
गाँव यह भीग रहा है ...

- रघुवीर सहाय

चित्रः तापोशी घोषाल

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17

अलविदा

जगदीश जोशी जी... अलविदा

1937 - 2016

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल